सिद्धयोग

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, मंवाई, आगरा

प्रकाशक

इस अंक में—

क्रम संख्या	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	मुक्ताभरणी हर:	....	१
२.	योगमार्ग और विश्व कल्याण (विशेष लेख)	योगयोगेश्वर भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	२
३.	तव: पुत्रा केनारी	सुश्री उमा शर्मा	४
४.	आश्रम समाचार	प्रतिनिधि द्वारा	७
५.	आंतरिक शक्ति योग	श्री किशोरीलाल शास्त्री	६
६.	भारतीय संस्कृति और योग	ब्रह्म० श्री हरिभक्त चैतन्य	१२
७.	अष्ट सिद्धि नव निधि के दाता	श्री कृपाशंकर उपाध्याय	१६
८.	प्रभु दर्शन (कविता)	श्री राघवेन्द्र तिवारी	१६
९.	खुदा नहीं तो खुदा से जुदा नहीं	श्री ब्रजमोहन वाशिष्ठ	२०
१०.	यौगिक चक्र और उनकी साधना	श्री बारेलाल नीरज	२४
११.	सार्थक जीवन (कविता)	श्री गौरीशंकर द्विवेदी	२५
१२.	ध्यान योग एवं ज्ञान योग का विश्लेषण	श्री मानिकलाल अग्रवाल	२६
१३.	आसन	श्री गिरीशचन्द्र शर्मा	२६
१४.	समाधिना सिद्धिः	श्री हीरालाल शास्त्री	३२
१५.	जीवन तरणी (कविता)	श्री 'दिव्य'	३८
१६.	सदाचार मनुष्यों का भूषण है	श्री दुर्गावल्लभ त्रिपाठी	३६
१७.	विरक्त जीवन का प्रभाव	श्री शारदाप्रसाद शर्मा	४०
१८.	योग विद्या का रहस्य	श्री शिवकुमार शास्त्री	४२
१९.	निर्गुण अध्यात्म योग	श्री सन्त महाराज	४३
२०.	जप यज्ञ और गायत्री मंत्र	श्री निरञ्जनसिंह बैसवाल	४५

प्रमुख सम्पादक
दिव्य
फोन ६६१६५

अवश्य आइए ! ॐ अवश्य देखिए !!

योग साधन आश्रम ऋषिकेश

का

वार्षिक-योग महोत्सव

सभी भाई बहिनों को यह जानकर परम हर्ष होगा कि अबकी योग-साधन आश्रम ऋषिकेश का वार्षिक योग-महोत्सव तिथि ज्येष्ठ सुदी अष्टमी, नवमी-दशमी तदनुसार ता० ५, ६ और ७ जून शनिवार, रविवार, सोमवार सन् १९७६ ई० को मनाया जायगा।

उत्सव का कार्यक्रम बहुत ही रोचक एवं ज्ञानवर्धक बातों का आयोजन किया जा रहा है। उत्सव में योग-सिद्धान्तों पर उच्चकोटि के प्रवचन, उपदेश, भजन एवं सुमधुर [illegible] संगीत आदि का कार्यक्रम रहेगा। आश्रम के ब्रह्मचारी अपनी यौगिक क्रियाओं का प्रदर्शन भी करेंगे। सभी सत्संग प्रेमियों को इस समारोह में सम्मिलित होकर लाभ उठाना चाहिए।

सभी भाई बहिनों को श्री गुरुदेव जी की ओर से इस उत्सव के आमन्त्रण-पत्र भी भेजे जा रहे हैं। किन्तु डाक व्यवस्था ठीक न होने के कारण सभी तक नहीं पहुंच पाते हैं। अतः सभी भाई-बहिन इस सूचना को ही अपना आमन्त्रण समझते हुए उत्सव में सम्मिलित हों।

नोट—७ जून सोमवार गंगा दशहरा को नगर शोभा यात्रा (जुलूस) का आयोजन है जिसमें बैंड बाजे के साथ श्री बालकृष्ण संकीर्तन मण्डल [illegible], श्री [illegible] संकीर्तन मण्डल [illegible] के अतिरिक्त और भी अनेक मण्डलियां भाग ले रही हैं। शोभा यात्रा नये सुन्दर झांकियों एवं बाजे-गाजे के साथ प्रातः ९ बजे योग-साधन आश्रम से प्रारम्भ होकर ऋषिकेश के मुख्य बाजारों से होती हुई प्रातः के लगभग ११ बजे आश्रम पहुँचेगी। अतः सभी सत्संग प्रेमियों को उत्साह के साथ इस शोभा-यात्रा में सम्मिलित होना चाहिए।

निवेदक :—

मन्त्री—योग, साधन आश्रम

रेलवे रोड, ऋषिकेश (उ० प्र०)

सिद्ध योग

वर्ष ९
अङ्क २

ध्यायं ध्यायं पवित्रं परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुखं विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थं बहुविशदं योगशास्त्रोपदेशात्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः'॥

मई,
१९७६

भुजंगाभरणो हरः

आप्यायनस्तमोहन्ता विषया दोषदाहकृत्।
सोमसूर्याग्निनयनस्त्रिनेत्रस्तेन शंकरः॥

'शंकर चन्द्र के समान जगदानन्द दायक, सूर्य के समान अज्ञानतमोनाशक तथा अग्नि के समान रागादि दोषों के दहन-कर्त्ता है। इसी कारण चन्द्रसूर्याग्निनयन अथवा त्रिनेत्र कहकर उनका वर्णन किया जाता है।'

× × × ×

योगिनः पवनाहारास्तथा गिरिबिलेशयाः।
प्रियरूपे धृतास्तेन भुजङ्गाभरणो हरः॥

'योगिजन सर्प के समान वायुभक्षण कर प्राण धारण करते हैं तथा पर्वतीय गुहाओंमें रहते हैं। 'विविक्तसेवी' एवं 'लघ्वाशी' होने के कारण वे शिवको इतने प्रिय हैं कि वे इन योगिजनों को अपने अङ्गका भूषण बनाये रखते हैं। इसी कारण शंकर 'भुजङ्गाभरण' के रूप में वर्णित होते हैं।'

हमारा विशेष लेख—

योगमार्ग और विश्व-कल्याण

[योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज]

विश्व-कल्याण का उद्घोष आज चारों ओर सुनाई देता है। चाहे कोई सामाजिक संस्था हो या धार्मिक लोक-कल्याण ही अपनी स्थापना का उद्देश्य बताती है। यही उद्देश्य लेकर समूचे भूमण्डल के देशों की सरकारें भी अपने-अपने क्षेत्रों में कार्यरत हैं। यहां तक कि भूमण्डलीय सरकारों का जो एक मिला-जुला संगठन बना है उसने भी अपना मुख्य उद्देश्य विश्व-कल्याण ही घोषित किया है और विश्व-कल्याण अथवा मानव-सेवा के व्यापक लक्ष्य को सामने रखकर ही इस भूमण्डलीय सरकारों के संयुक्त विश्व संघ जिसे अंग्रेजी में यूनाइटेड नेशनस भी कहा जाता है, की ओर से विविध प्रकार की परियोजनायें भी चलाई जाती हैं। युद्ध विराम आदि के आदेश देकर यही संगठन युद्ध-रत राष्ट्रों को रोककर उन्हें इस बात के लिए विवश करता है कि लड़ने वाले राष्ट्र अपने विवाद मिल-बैठकर आपसी वार्ता द्वारा तय करें। क्योंकि युद्ध निरपराध मानवों की हत्या करके विश्व का अकल्याण ही करता है। ऋषि, मुनि और साधु-सन्तों के जीवन का उद्देश्य भी विश्व-कल्याण रहता है और इसी विश्व-कल्याण के लिए वे सर्वस्व त्यागकर विरक्त भावसे संन्यास आदि आश्रमों में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी विश्व-कल्याण की भावना रखते हैं किन्तु विश्व के मानव के कल्याण करने का कौनसा मार्ग है अथवा इस साध्य को प्राप्त करने का साधन क्या है, यह विचारणीय है। भले हीं इसका समाधान कोई किसी प्रकार से करे, तभी इतना अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि विश्व-कल्याण की मूलभूत इकाई मानव-कल्याण ही है। अतः मानव-कल्याणकी योजना ही विश्व-कल्याण की योजना हो सकती है। जब इस तथ्य को हम स्वीकार कर लेते हैं तब यह प्रश्न सामने आता है कि मानव के कल्याण का उसको शाश्वत सुख, शान्ति प्राप्त कराने का, मार्ग कौनसा है? दर्शनकारों और ऋषि-मुनियों ने इसका उत्तर दिया है—धर्मो रक्षति रक्षितः। जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसको रक्षित रखता है। मानी जो धर्म का जीवन व्यतीत करता है धार्मिक मर्यादाओं का परिपालन जिसके जीवन का लक्ष्य होता है वही निःश्रेयस और अभ्युदय को प्राप्त कर

पाता है और अभ्युदय तथा निःश्रेयस की प्राप्ति जिस साधन अथवा आचरण से हो सके वही धर्म है। जैसा कि दर्शनकार ने कहा है—

यतो अभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिस्स धर्मः

अब आइए हम इस प्रश्न पर विचार करें कि अभ्युदय निःश्रेयस प्राप्त करने का मार्ग क्या है। निश्चित रूप से इसका उत्तर हमें पातञ्जलि योग दर्शन देता है। भगवान पतञ्जलि ने मानव वृत्तियों का गहराई से अध्ययन करके उन्हें मर्यादित और धर्मानुकूल बनाने के लिए यम और नियमों के परिपालन को जो पहली सीढ़ी बताई है वही अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्ति का मार्ग है यदि मनुष्य यम और नियम का जैसा कि योग दर्शन में वर्णित है, दृढ़ता से पालन करने लगे तो सम्पूर्ण मानव समाज और विश्व का कल्याण हो सकता है। विश्व-कल्याण की आधार शिला यदि रखनी है तो अहिंसा, सत्य, सन्तोष, अपरिग्रह, शौच, इन्द्रियनिग्रह आदि भावनाओं की परिपुष्टि जन-जन में करनी होगी और यही दिशा देता है योग दर्शन भी।

अतः योग मार्ग ही एक मात्र ऐसा मार्ग है जिससे विश्व कल्याण बिना किसी धर्म और देश की सीमाओं के प्रतिबंध के निश्चित रूप से हो सकता है। न अन्य पन्था विद्यतेऽयनाय के समान यहां योग मार्ग की मान्यताओं के मानने के सिवाय विश्व-कल्याण का कोई अन्य मार्ग है ही नहीं। यह प्रसन्नता और हर्ष का विषय है कि विश्व में अब सुख और शान्ति की स्थापना हेतु योग केन्द्रों की बहुधा स्थापना होने लगी है। भारत में जगह-जगह अनेक योग प्रचारक संस्थान खुले हुए हैं और यह सभी अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार योग प्रचार द्वारा विश्व-कल्याण के कार्य में लगे हुए हैं। स्कूल और डिग्री कालेजों में योग की कक्षायें चलाई जायें यह प्रश्न भी सरकारों के विचाराधीन है। बनारस विश्व विद्यालय ने भी हाल ही योग पाठ्य क्रम को स्वीकृत करते हुए उसके प्रशिक्षण की एक उपयोगी योजना बना कर उसे अमली रूप देने का निश्चय किया है। विश्व-कल्याण अथवा मानव समाज के कल्याण के लिए यह सब प्रयास अभिनन्दनीय है। विश्व में योग मार्ग पर चलने का संकल्प लेने वालों की संख्या जैसे-जैसे बढ़ती जायगी वैसे ही वैसे विश्व-कल्याण का स्वरूप स्पष्ट रूपेण हमारे सामने उजागर होता चला जायगा। बिना योग मार्ग को अपनाये हम विश्व-कल्याण का लक्ष्य प्राप्त ही नहीं कर सकते। योगी ही स्वयं ऐश्वर्यवान होकर दूसरों को ऐश्वर्यवान बना सकता है। अतः योग धर्म अनिवार्यतः हमारे सबके जीवन का मुख्य अंग होना चाहिए। जब ऐसा होगा तभी संसार-ताप से झुलसते हुए मानव का कल्याण होगा यही हमारा अपना अभिमत है।

तपःपूता केतकी

[सु श्री उमा शर्मा]

परम सती सुकला के परम पातिव्रत्य की महिमा का वर्णन गतांक में किया गया था। प्रस्तुत लेख में सांसारिक बन्धनों का त्याग करके किस प्रकार से एक कन्या तपस्या के बल से क्या कर सकती है, इसका उल्लेख करने का प्रयास कर रही हूं।

गोस्वामी तुलसी दास जी ने "श्री रामचरित मानस" में तप के बारे में लिखा है:—

तपबल रचइ प्रपंच बिधाता।
तपबल बिष्णु सकल जग त्राता॥
तपबल शंभु करइ संहारा।
तपबल शेष धरइ महि भारा॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी।
करइ जाइ तप अस जिय जानी॥

अर्थात् तप बल से ही ईश्वर इस सृष्टि की रचना करता है, तप से ही भगवान विष्णु सारे संसार का पालन करते हैं, तप बल से ही भगवान शंकर संहार करते हैं, तप बल से ही शेष नाग पृथ्वी को अपने शरीर पर धारण करते हैं और तप पर ही यह सम्पूर्ण सृष्टि आधारित है।

हमारे शास्त्र भी कहते हैं कि—

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवामृत्युमुपाघ्नत्"

अर्थात् ब्रह्मचर्य और तप के बल से देवताओं ने मृत्यु को जीत लिया। ब्रह्मचर्य और तप दो शब्द भिन्न भिन्न मालूम पड़ते हैं। पर वस्तुतः ब्रह्मचर्य का पालन करना भी महान तप ही कहलाता है। योगदर्शन में भगवान पतंजलिदेव तपका लक्षण बताते हुए कहते हैं—

"द्वन्द्व सहनं तपः"

अर्थात्—सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास आदि के जोड़े को सहन करना ही तप है अतः जहाँ भी द्वन्द्व सहन का विषय आयेगा अवश्य लागू हो जायेगा। ब्रह्मचर्य धारण करने में इन्द्रियों के वेगों को रोक कर अपने वश में रखना महान् तप है।

पहिले—प्रजापति दक्ष की कन्या थी केतकी। वह कन्या रूप की दृष्टि से गुण की, शील की, आचार की, तप की मूर्तिमती लक्ष्मी ही थी। वह स्वभावतः ब्रह्मचारिणी ही रही। इसने सांसारिक बन्धनों को त्याग कर अपने माता पिता से आज्ञा ले, हिमालय की चोटियों पर जाकर घोर तपस्या आरम्भ कर दी। तपस्या करते करते एक बार साक्षात् भगवती गाय के रूप में उसके पास आई किन्तु केतकी ने उसकी उपेक्षा की। तब नाग रूपिणी भगवती ने प्रगट होकर कहा—

"केतकी तुझे कुमारी रहने का बड़ा गर्व हो गया है, तेरे इस गर्व का नाश करने के लिए ही मैं आई हूँ, तुझे शाप देती हूँ कि तू पृथ्वी पर नारी के रूप में जन्म लेकर पाँच पतियों की पत्नी बनेगी। शाप सुनकर केतकी को हार्दिक दुःख हुआ उसने दीन होकर आर्त स्वर से भगवती माँ से क्षमा प्रार्थना की। करुणा की मूर्ति दयामयी माँ भगवती ने कहा–'बेटी! रो मत, तेरे द्वारा भगवान का कार्य सिद्ध होगा। तू भगवान को प्रिय है। अतः प्रसन्नता से उनका कार्य कर। पाँच स्वामी होने पर भी तेरा धर्म अटल रहेगा और तू जगत में सती शिरोमणि मानी जायेगी। जगत तेरी पूजा करेगा। तेरा यश अक्षय और तेरा नाम स्मरणीय रहेगा।' इस प्रकार पवित्र वरदान देकर भगवती अन्तर्धान हो गयीं।

तपस्विनी केतकी का मन स्थिर व शान्त नहीं हुआ। वह इस बात से बड़ी दुःखी थी कि मुझे तपोभूमि छोड़कर मृत्युलोक में जाना पड़ेगा वह इधर-उधर रोती-फिरती थी। मन उसका अत्यन्त बेचैन था।

एक दिन उसने गंगा जी में प्रवेश किया, देवमाया से उसके आँसुओं की हरेक बूँद जल के साथ मिलकर एक-एक दिव्य-स्वर्ण कमल बनने लगी। वह केतकी इस बात को बिल्कुल भी नहीं जानती थी। पवित्र मन्दाकिनी के जल में बहते हुए वे स्वर्ण-कमल स्वर्ग की ओर चले गये।

उधर मन्दाकिनी के किनारे देवराज इन्द्र, धर्म, वायु देवता अश्विनीकुमार स्वर्ग को जा रहे थे। स्वर्ण-कमलों की अत्यन्त मधुर और दिव्य गन्ध से उनको बड़ा सुख प्राप्त हुआ। मन्दाकिनी में बहते हुए इन कमलों को देख इन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और यह पुष्प कहाँ से आते हैं, इस बात का पता लगाने का विचार करने लगे।

सर्वप्रथम इन स्वर्णकमलों का पता लगाने धर्मराज गये, किन्तु वे लौटे नहीं, तब वायुदेव गये और उसके बाद दोनों अश्विनीकुमार भी चले गये। जब इन लोगों में से कोई भी नहीं लौटा तब आश्चर्यचकित होकर स्वयं देवराज भी खोज करने चले। चलते-चलते वे वहाँ पहुँच गये जहाँ पर मन्दाकिनी में केतकी खड़ी हुई थी। इन्द्र ने उसे देखकर उसका परिचय पूछा और उससे अपने साथ विवाह करने के लिए कहा।

इन्द्र देव की बात सुनकर केतकी को बड़ी व्यथा हुई। उसने कहा—"हे देवराज! मैं जन्म से ही तपस्विनी हूँ। भगवान् शिव आशुतोष जी के चरणों की मुझ पर पूर्ण कृपा है। मेरे प्रति विवाह का प्रस्ताव करने से जैसे इससे पहले चार देवपुरुष कठोर दण्ड भोग रहे हैं, वैसे ही आपको भी भोगना होगा। आप चाहे देवराज हों या कोई और। मुझे भगवान शिव की कृपा से किसी की भी परवाह नहीं है।"

तपस्विनी केतकी की बात सुनकर देवराज इन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने निर्लज्जता के साथ पुनः केतकी से साथ विवाह का प्रस्ताव रखते हुए पहले आये हुए चारों देवताओं का पता पूछा। इन्द्र के पूछने पर केतकी ने कहा—ठीक है उन्हें देखना है तो मेरे साथ चलो। इस प्रकार कहकर केतकी इन्द्रदेव को हिमालय पर ले गयी। वहाँ पर एक योगीश्वर समाधिस्थ थे। केतकी ने दूर से ही उनको बताकर इन्द्र से कहा कि—"इन महात्मा से पूछिये कि वे कहाँ हैं ?"

देवराज इन्द्र ने उन योगिराज के पास जाकर यम, वायुदेवता, अश्विनीकुमार के विषय में पूछा, परन्तु समाधिस्थ महात्मा ने कोई भी उत्तर नहीं दिया। तब इन्द्र ने कोपित होकर कुछ दुर्वाक्य कहे। महात्मा की समाधि टूट गई और देखते देखते ही महात्मा त्रिशूल धारी महान् योगीश्वर भगवान् रुद्र के रूप में परिणत होकर गर्जते हुये बोले—"तुम लोग बार-बार एक के बाद एक आकर मेरी आश्रिता इस आजीवन ब्रह्मचारिणी परम तपस्विनी देवी को क्यों सताते हो ? जाओ, पहले चारों को जो दण्ड दिया गया है, तुम भी उसी को भोगो।"

इतना कहकर रुद्रदेव एक अन्धकारमयी गुफा के सामने इन्द्र को ले गया। इन्द्र ने काँपते हुए देखा कि धर्मराज, वायुदेव और दोनों अश्विनीकुमार हाथ-पैर बँधे वहाँ पड़े हैं।

देवराज इन्द्र डर कर भगवान् रुद्र के चरणों पर गिर पड़े और हाथ जोड़ कर बार-म्बार स्तुति करने लगे। आशुतोष भगवान् शिव प्रसन्न हुए और उनका दोष क्षमा करके उन पाँचों को भगवान् विष्णु के पास ले गये। उनकी बात सुनकर भगवान् विष्णु ने कहा—"स्वर्ग के देवता होकर भी जब तुम इन्द्रियों का दासत्व नहीं छोड़ सके, तब तुम्हें मृत्युलोक में जाकर मनुष्य देह धारण करना पड़ेगा ही। तुम पाँचों वहाँ जाकर जन्म लोगे और भगवती के वचनानुसार दूसरे जन्म में यह केतकी तुम्हारी पतिव्रता पत्नी होगी। संसार के कल्याण के लिये इस कार्य की आवश्यकता है। इसकी सिद्धि के लिए मैं भी तुम लोगों के साथ ही द्वापर युग में पृथ्वी पर अवतार्ण होऊँगा।

आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाली महान् सती ब्राह्मण कन्या ही केतकी भगवान् के कार्य के लिये भगवती के वचन को निमित्त बनाकर राजा द्रुपद के यहाँ यज्ञकुण्ड से याज्ञसेनी रूप में प्रकट हुई। इन्द्र, धर्म, वायु तथा अश्विनीकुमारों ने कुन्ती तथा माद्री के गर्भ से जन्म लेकर इस केतकी रूपी द्रोपदी का पाणिग्रहण किया। पूर्व जन्म के महान् तपके फलस्वरूप ही सती द्रोपदी भगवान् श्रीकृष्ण की सखी बन सकी और इसने महान् पातिव्रत्य तथा अपनी तपस्या का आदर्श स्थापित किया। कहते हैं कि—

"मनुष्याः देवानां पशुः।"

अर्थात् मनुष्य देवताओं के पशु होते हैं, किन्तु महान् तपस्विनी केतकी की तपस्या के फलस्वरूप देवताओं को भी देवलोक छोड़कर मृत्युलोक में पृथ्वी पर आना पड़ा।

यह था परम तपस्विनी केतकी के तप का महान् प्रभाव।

आश्रम समाचार—

श्री सिद्ध गुफा का वार्षिक महोत्सव

योग महामेला और प्रभुजी का पावन जयन्ती पर्व

देश के प्रत्येक भाग से आये हुए साधकों की श्रद्धाञ्जलि

(हमारे प्रतिनिधि द्वारा)

गत ६, ७ और ८ अप्रैल १९७६ ई० को त्रिदिवसीय समारोह के रूप में योग योगेश्वर श्री सद्गुरु देव जी की अध्यक्षता में श्री सिद्ध गुफा सवाई का वार्षिक महोत्सव प्रातः स्मरणीय जन जन वन्दनीय महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का पावन जयन्ती पर्व अतीव उल्लास, उत्साह और उमंग-पूर्ण वातावरण में मनाया गया।

इस त्रिदिवसीय समारोह में भाग लेने के लिए उत्तर प्रदेश, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, जम्मू काश्मीर, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, बिहार, बंगाल, मध्यप्रदेश, गुजरात, [illegible] और दूसरे प्रांतों एवं राज्यों के कई हजार साधक और योग प्रेमी भाई बहिनों ने आकर अपनी भाव भीनी श्रद्धाञ्जलि महाप्रभु जी और अपने हृदयाराध्य श्री सद्गुरु देव जी के चरणों में अर्पित की।

बाहर से आये हुए सभी आगंतुक साधक भाई-बहिनों के आवास की व्यवस्था प्रतिवर्ष की भांति आश्रम के सुरम्य सुविस्तृत उद्यान में अस्थाई रूप से बनाये गये रावटियों के उपनगर में की गई थी तथा सभी के भोजन की सामूहिक व्यवस्था भी आश्रम के भोजनालय द्वारा की गई। जल तथा बिजली के प्रकाश आदि की सब व्यवस्था भी पूर्ववत सुचारुरूपेण श्री सद्गुरुदेवजी के निर्देशन में सभी के लिए सुलभ थी। सुदूर राज्यों और प्रान्तों से आये हुए साधक भाई बहनों की भारी भीड़ और इन सभी के त्रिदिवसीय काल पहले से दूसरे भी अधिक काल तक आश्रम प्रवास को देखकर इस बात का सहज आभास होता रहा कि कितनी अगाध श्रद्धा प्रेम और आदर इन सभी भाई बहनों के हृदय में अपने महाप्रभु और उनकी लीला भूमि तथा अपने श्री सद्गुरुदेव के प्रति है।

इस महोत्सव का आरम्भ प्रतिदिन प्रभुजी के रूप के प्रति की गई सामूहिक आरती से होता रहा। श्री सद्गुरुदेव जी इस आरती का आरम्भ स्वयं बड़े मनोयोगपूर्वक करते रहे, तथा यही क्रम सामूहिक आरतीका सदा रहता

था। प्रत्येक कार्यक्रम के आरम्भ में समय की परिपालना का ध्यान विशेष रूप से रक्खा जाता था। शुद्ध आहार विहार और शुद्ध स्वाध्यायशीलता सभी के दैनिक जीवन में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता था। मदोत्तेजक पदार्थों अथवा धूम्रपान आदि का पान कोई भी आश्रम परिधि में नहीं कर सकता था। ऐसा करना विशेष रूप से वर्जित था। वैसे भी योग-पथ के सभी साधक ऐसे दुर्व्यसनों से अछूते ही रहते हैं।

रत्न सिंहासन सुसज्जित पण्डाल के बीच महाप्रभु जी के देदीप्यमान रूप की झाँकी आकर्षक ढङ्ग से श्री सद्गुरुदेव जी महाराज और परमपूज्या बहन श्री द्रौपदीदेवीजी ने स्वयं बड़ी लगन से अपनी देखरेख में सजाई और संवारी थी। मिर्जापुर से शृंगार कला में दक्ष एक विशेष कलाकार भक्त भाई को बुलाकर प्रभुजी तथा उनके दर्शनीय मंडप को सजावट के वस्त्रादि सिलाकर तैयार कराये गये थे। निःसंदेह उनके रूप की झाँकी और सजावट बड़ी ही प्रभावोत्पादक प्रेरणादायक और मंगलदायक थी। सहस्राधिक कण्ठों से जब सामूहिक आरती के पश्चात् उनका जय जयकार का गगनभेदी नाद गुञ्जरित होता था तब एकाग्र चित्त से उनका दर्शन करने वाले साधक के मुँह से सहसा निकल पड़ता था—

कहा कहौं छबि आज की,
भले बने हो नाथ।

प्रथम दिन के महोत्सव का आरम्भ पूज्य सद्गुरुदेव जी ने सामूहिक आरती के पश्चात् गुरु गीता के पाठ से किया। पाठ से पहले गुरुगीता के महत्व पर प्रकाश डालते हुए आपने बताया कि यह गुरुगीता भगवान आदि शिव ने भगवती उमा को स्वयं अपने मुख से सुनाई थी और उन्हें बताया था कि बिना गुरु के जगत के राग-रंगों में फँसे हुए व्यक्ति की मुक्ति नहीं होती, इसलिए प्रत्येक को अपनी रुचि, श्रद्धा और विवेक के अनुसार अपने गुरुदेव का चयन करना चाहिए। श्रुति का भी कथन है कि 'आचार्यवान भव' क्योंकि बिना आचार्य अथवा सद्गुरु की शरण जाये जीवन की दुरूह गुत्थियां सुलझ ही नहीं पातीं। देवी पार्वती ने शिव की अर्धांगिनी होते हुए भी उन्हें गुरु में वरण कर उनसे योग-दीक्षा प्राप्त की थी। गुरु का अपना विशेष महत्व होता है। लोक में भी जिसका गुरु नहीं होता उसे 'निगुरा' कहकर निन्दित किया जाता है।

इस प्रकार गुरु-गीता को समझाकर श्री गुरुदेव जी उसका पाठ पूर्ण कराते रहे। दोपहर के भोजन के बाद २॥ बजे से सामूहिक संकीर्तन का कार्यक्रम आरम्भ होकर सायंकालीन आरती तक चलता रहता था। बहन द्रौपदी देवी जी के प्रवचनोपदेश विशेष रुचि और आदर के साथ सुने जाते रहे। आरती के पश्चात् भी सत्सङ्ग संकीर्तन और उपदेशों

(शेष पृष्ठ ४८ पर पढ़िये)

अचिन्त्य शक्ति योगी

[श्री किशोरीलाल शास्त्री]

[योगी अचिन्त्य शक्तियों के भण्डार हैं, साधारण मनुष्यों के लिए जो विषय असम्भव सा प्रतीत होता है, योगी उसे अपने योग ऐश्वर्यों के बल से क्षणमात्र में पूरा कर डालते हैं। मनीषी लेखक श्री किशोरीलाल जी शास्त्री ने अपने इस लेखमें इसी तथ्य का कुछ विश्लेषण किया है।   —सं० सम्पादक]

सुना जाता है और कहा भी जाता है कि परमात्मा की शक्ति अचिन्त्य है, उसे कोई भी प्राणी कल्पना के द्वारा भी उसके प्रमाण (नाप तौल) का दर्शन नहीं कर सकता, फिर कराना तो दूर ही है। इसीसे श्री तुलसीदास जी ने अपने महाकाव्य श्री रामचरितमानस में स्पष्ट ही लिखा है कि—

जो चेतन को जड़ करै,
जड़हि करै चैतन्य।
अस विचित्र भगवन्त गति,
जे जानहिं ते धन्य॥

अर्थात् परमात्मा की शक्ति, या तो कहिये कि परमात्मतत्त्व अनुमान से भी परे शक्ति वाला है, अर्थात् वह अचिन्त्य शक्ति ही कहा है, परन्तु केवल कह तो अचिन्त्य शक्ति कहते रहने से ही तो इस मननशील मानव प्राणी को पूर्ण विश्राम नहीं मिलता। उसकी बुद्धि तो नवीन-नवीन तर्कों (कल्पनाओं) के द्वारा उसके अन्वेषण में लगी ही है, जिसके परिणामस्वरूप ही हमें वर्तमान में वेदों से प्रारम्भ करें। लौकिक ग्रामीण गीतों में और सिद्ध पुरुष महात्मा कबीर की गूढ़ार्थ साखियों में भी उसी के कल्पनातीत स्वरूप को प्रत्यक्ष जनाने का प्रयत्न किया हुआ दिखता है। परन्तु अभी तक शास्त्र और आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक सभी वैज्ञानिक उसे अज्ञेय कहकर ही मानते चले आ रहे हैं। परन्तु सत्य तत्त्व के जिज्ञासुओं की ज्ञान की पिपासा शान्त नहीं होती दिखाई पड़ती।

वेदों में तो स्पष्ट वाक्य मिलता है कि—

"चरैवेति चरैवेति"

अर्थात् "चलते ही रहो, चलते ही रहो," विश्राम मत करो। सत्यार्थियों के मानव मत बनो, जिन्हें कहा गया है—

प्रारभ्य विघ्न विहता,
विरमन्ति मध्याः।

अर्थात् जो लोग किसी काम को प्रारम्भ करके बार-बार विघ्नों से परेशान होकर अपने अभीष्ट कार्य को अधूरा ही छोड़ देते हैं, वे मध्यम श्रेणी के मानव हैं। अर्थात् त्रिशंकु के समान हैं उन्हें इच्छित वस्तु भी न मिली और न आलसियों के समान निश्चेष्ट पड़े रहने का भी आराम मिला. इससे तो प्रारम्भ न करने वाले ही अच्छे हैं—जो खाओ, पियो, मौज उड़ाओ के सिद्धान्त को मानते हैं। जैसा कि चार्वाक मत वाले कहते हैं कि—

यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनः रागमनं कुतः।

यही बात पाश्चात्य देशों के मनुष्य भी अपनी भाषा में कहते हैं—"ईट, ड्रिंक, बी, मैरी।"

परन्तु यह सिद्धान्त भारतीयों के लिये मान्य नहीं है। भारतवर्ष ही कर्मभूमि है और शेष पृथ्वी भोगभूमि है। मानव यहां जो सत् असत् कर्म करता है उसका फल (परिणाम) भोगने के लिए वह अन्य देशों में और अन्य प्राणियों, पशु, पक्षी, कीट, पतंगादि चौरासी लक्ष योनियों में जन्म ग्रहण करता है। इसी से भारतीय महर्षियों के अविराम चिन्तन तथा ध्यान, जप, तप, आसन, संयम आदि के द्वारा हमें चारों वेद, छह शास्त्र, १८ पुराण, १८ स्मृतियां, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता, आदि भाष्य, श्री वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्म-रामायण, ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्, तन्त्रशास्त्र आदि अपार वैज्ञानिक साहित्य प्राप्त हुआ है। इसी परम्परा में ही भारतीय संस्कृत भाषा के मनीषी कवियों ने भारत को ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व को अपूर्व, अनुपमेय, अकल्पनीय, महा-चमत्कारी भावों से भरे हुए महाकाव्य, नाटक आख्यान, आख्यायिका, उपन्यासादि ग्रन्थ प्रदान किये हैं।

यद्यपि वे लौकिक काव्य केवल मनोरंजन के लिए ही उपयोग में लाये जा रहे हैं, परन्तु इनमें भी कुछ ऐसी वस्तुओं का वर्णन देखने में आता है, जो आधुनिक वैज्ञानिकों को चेलेंज करता सा जान पड़ता है कि अभी तो तुमने प्राचीन वैज्ञानिक अन्वेषणों का भी प्रायोगिक प्रत्यक्ष (प्रैक्टिकल) नहीं किया है उसे कीजिये। १—जैसे रामचरितमानस में "लक्ष्मण की रेखा," जिसे महा वैज्ञानिक लंकापति रावण भी नहीं लांघ सका था, जो कि भयंकर दिव्यास्त्रों का ज्ञाता तथा त्रैलोक्य विजयी था। श्रीराम के साथ जिसका युद्ध अनुपमेय हुआ था। जैसा कि कहा है—

रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोः इव।

इसी प्रकार संस्कृत के ग्रन्थों में तो अभी असंख्यों ऐसे प्रयोग लिखे पड़े हैं जिनके प्रैक्टी-कल की सिद्धि से संसार फिर से भारत को प्रभावशाली बना सकेगा। हमारे संस्कृत के

काव्यों के कवियों के नामों द्वारा कविता कामिनी का शृंगार वर्णन करते हुए श्री मुरारि मिश्र अपने अनर्घ राघव नाटक में महाकवि कालिदास जी को "कविकुलगुरु" की उपाधि दे रहे हैं। यथा—

यस्याःश्चोरश्चिकुर-
निकरः कर्णपूरो मयूरो।
भासोहासः कविकुलगुरुः,
कालिदासो विलासः॥
हर्षो-हर्षो हृदयवसतिः,
पञ्चबाणस्तु बाणः।
केषां नैषा कथय,
कविता कामनी कौतुकाय॥

इन्हीं कविकुलगुरु महाकवि तथा महायोगी श्री कालिदास के अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न सिद्ध-योगी होने को प्रमाणित करने वाली इनकी असम्भव प्रतीयमान, पूर्ण वैज्ञानिक, उक्ति को यहाँ उपस्थित किया जाता है, जिसे इन्होंने अपने "अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक" के पाँचवें अङ्क में महर्षि दुष्यन्त के मुख से कहलाया है, जो कि आज के अणुबम, उद्जनबम जैसे विनाशकारी अस्त्रों के निर्माण करने वाले वैज्ञानिकों के लिए चेलैंज है। क्योंकि इनके अस्त्र तो केवल विनाश करते हैं, और कालिदास का अस्त्र वध्य का वध करता है, और रक्षणीय की रक्षा करता है। यथा—

जब राजर्षि दुष्यन्त शकुन्तला के त्याग के अनन्तर मत्स्य के उदर में प्राप्त स्वनामाङ्कित अंगूठी को देखते हैं और शकुन्तला के गान्धर्व विवाह द्वारा उसका वरण और महर्षि कण्व के आश्रम के अपने प्रतिज्ञा वचनों, तथा एकान्त प्रणय को स्मरण कर व्यथित हो जाते हैं, उसी समय राक्षसों से युद्ध करने के लिये अमर लोकपति देवेन्द्र के सारथी मातलि दुष्यन्त को लिवाने को आते हैं। परन्तु दुष्यन्त को वियोग दुःख से दुःखी देखकर उन्हें पुनः वीररस के रसिक बनाने के लिये अपनी तिरस्कारणी विद्या से अदृश्य रहकर विदूषक को पीटते हैं, तब विदूषक की आर्तक्रन्दन ध्वनि सुनकर दुष्यन्त क्रुद्ध होकर धनुष पर बाण संधान करना चाहते हैं। परन्तु मारने वाले को अदृश्य देख कर अपने दिव्यास्त्र की अचिन्त्य शक्ति का परिचय देते हुए कहते हैं—

यो हनिष्यति वध्यं त्वां,
रक्ष्यं रक्षति च द्विजम्।

अर्थात् हमारा यह बाण वध्यनीय को ही वध देगा, और मारने योग्य को ही मारेगा।

यहाँ यह बाण में चैतन्य प्राणी के समान वध्यनीय और रक्षणीय के जान लेने की शक्ति का भर देना सिद्धयोगी का ही कार्य है, क्योंकि ऐसे असम्भव कार्यों के करने की अचिन्त्य शक्ति सिद्धयोगियों में ही होती है। इसी प्रकार की शक्ति का वर्णन श्री तुलसीदास जी ने भी

'रामचरित मानस' के लंका काण्ड में श्री रामचन्द्रजी के बाण का किया है। सुबेल पर्वत पर बैठे हुए श्रीराम के द्वारा फेंका गया बाण दरबार में बैठे हुए रावण के छत्र मुकुट और मंदोदरी के कानों के कर्ण फूलों को कानों में से नीचे गिराकर लौट आया और श्रीराम जी के तूणीर में प्रविष्ट हो गया।

छत्र मुकुट ताटंक सब,
हते एक ही बान।
सब के देखत महि गिरे,
मर्म न काहू जान॥
यह कौतुक करि रामशर,
प्रविश्यो आय निषंग।
रावण सभा ससंक सब,
देखि महा रस भङ्ग॥

इसी अचिन्त्य शक्ति को प्राप्त कर योगी लोग इच्छा स्वरूप, इच्छा गति, इच्छा मरण वाले बन जाते हैं और असम्भव अद्भुत प्रदर्शन भी करने लगते हैं।

कविकुल गुरु महाकवि कालिदास में भी यह अचिन्त्य शक्ति विद्यमान थी। जिसका दिग्दर्शन उनकी जीवनी से सम्बन्धित ग्रन्थों में अनेकों रूपों में पाया जाता है। एक बार उनके विरोधी ईर्ष्यालु किसी व्यक्ति ने महाराज भोज से कालिदास जी के सम्बन्ध में कहा कि महाराज! कालिदास तो मछली खाते हैं। तो महाराज को विश्वास न हुआ। तब वह एक बार महाराजा भोज को साथ लेकर उस समय बाजार गया जब कविराज वस्त्र में मत्स्य छिपाकर कांख में दबाकर ला रहे थे। मार्ग में महाराज भोज से नमस्कार हुई। तब महाराज ने पूछा—कक्षे किम्?=कांख में क्या है। कवि ने कहा—मम पुस्तकम्=मेरी पुस्तक है। उसमें से पानी की बूंदें देख कर महाराज ने फिर पूछा—स्रवते किम्?=इसमें से क्या झर रहा है? तब कविराज ने कहा—काव्यरसः=काव्य रस है। और कांख से निकालकर काव्य ग्रन्थ दिखा दिया। यह सिद्धि की ही अचिन्त्य शक्ति थी। इसे प्राप्त करने के लिए योगाभ्यास से बढ़कर और कोई साधन नहीं है। परन्तु यदि अपने इष्टदेव के मन्त्र का जप करके या श्री गुरु मन्त्र का जप करके सिद्ध कर लिया जाय, तब भी इसी प्रकार की अचिन्त्य शक्ति प्राप्त हो जाती है। यह भी महाकवि कालिदास जी की जीवनी से स्पष्ट रूप से सत्य प्रत्यक्ष है। इन्होंने अपने गुरु जी से प्राप्त चिन्तामणि मन्त्र की सिद्धि दृढ़ अध्यवसाय के द्वारा जपयोग से ही प्राप्त की थी। जप से देवता का सान्निध्य प्राप्त हो जाने पर देवता के अनुग्रह से ही यह अचिन्त्य शक्ति प्राप्त होती है। अन्य उपाय से नहीं। इस युग में तो केवल श्री गुरुदेव के अनुग्रह से ही यह संभव हो सकता है। साधकों को इस ओर सावधान रहना चाहिये।

पूर्व प्रकाशित से आगे—

भारतीय संस्कृति और योग

[ब्रह्मचारी श्री हरिभक्त चैतन्य (जम्मू, काश्मीर)]

पांच-नियम

१. शौच—

शरीर मन, वाणी, कर्म, ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां अन्दर-बाहर से शुद्ध पवित्र सात्विक बना लेना। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध को पवित्र, आत्मोन्नति भाव से ग्रहण करने से अन्तःकरण की शुद्धि, चित्त की एकाग्रता, जितेन्द्रियता एवं आत्मानन्दानुभव की योग्यता प्राप्त होती है। इसी जन्म में आत्म साक्षात्कार हो जाता है।

२. सन्तोष—

न्याय पूर्वक सर्वोचित व्यवहार से प्राप्त वस्तुओं में सुख का अनुभव करना। सन्तुष्ट रहने से निरन्तर आत्मानन्द की धारा चलती है। सर्वोत्तम सुख का लाभ होता है।

३. तप—

सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान, लाभ-हानि, जय-पराजय में बराबर आत्मानन्दमयी स्थिति बनाये रखना। अशुद्धि दूर हो जाती है। मन-वाणी-कर्म से सर्वभूत हितकर व्यवहार करना। इससे शरीर और इन्द्रियों को सिद्ध-बल प्राप्त होता है।

४. स्वाध्याय—

आत्मोन्नतिकारक प्रभु नाम जप पाठ, सद्ग्रन्थाध्ययन करना, जिससे प्रभु भक्ति-प्रेम जागृत हो। इससे इष्ट-तत्व की समीपता एकाग्रता का अनुभव होता है। दुष्कर्मों से छुटकारा हो जाता है। ईश्वर की कृपा दृष्टि प्राप्त होती है।

५. ईश्वर-प्रणिधान—

सारे पवित्र कर्म परम गुरु ईश्वर के अर्पित कर देना। फल की लालसा न रखना। इस "तप स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान" क्रिया योग से समाधि भावना की योग्यता प्राप्त होती है। क्लेशों, बन्धनों से, अज्ञान माया-पाश से छुटकारा हो जाता है।

१. आसन—

योगासन अनेक प्रकार के हैं। कुछ स्वास्थ्य

कर हैं, कुछ भजन ध्यान में बैठने के हैं। इनके अभ्यास से आजीवन उत्तम स्वास्थ्य, निरोगता और सर्वोत्तम स्थिर सुख का अनुभव होता है। जिस आसन में बैठे बैठे उठने की इच्छा न हो, आनन्द बढ़ता जाये तो समझें कि यह आसन मुझे सिद्ध हो गया है। योगासनों से बाहर की शक्ति अन्दर आकर हड्डियों को सुदृढ़ बनाती है। आत्मानन्द का स्पर्श होता है। अन्तिम जीवन पर्यन्त बुढ़ापा दुःखदायी प्रतीत नहीं होता। आत्मिक ओज बढ़ता है। दूसरे व्यायामों से अन्दर की शक्ति बाहर जाती है। मांस मोटा होता है, हड्डियां कमजोर पड़ जाती हैं। आलस्य, जड़ता, भारीपन, अन्धकार का अनुभव होता है।

२. प्राणायाम—

श्वास-प्रश्वास की गति को सूक्ष्म कर देना, प्राण स्थिर कर देना, इससे नाड़ी जाल के अन्दर के मल शुद्ध होते हैं। वात, पित्त, कफ जन्य दोष दूर हो जाते हैं। जन्म-जन्मान्तरों के मानसिक दोष संस्कार मिट जाते हैं। ज्ञानाग्नि दीप्त होकर दुःखदायक संस्कारों को दग्ध कर देती है।

३. प्रत्याहार—

इन्द्रियों को बाहर से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ग्रहण करने की वासना बनी हुई है, इसको हटाने के लिये भावना की जाती है कि आत्मा में ही विषयों की उत्पत्ति बराबर प्रतीत हो रहा है। अपने अन्दर ही सारे विषयों का मूल के आत्मानन्द है तो बाहर क्यों भटकना? अन्तरानुभूति से बाह्य विषय वासना की निवृत्ति होती है।

यम-नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार ये पाँच योग के बहिरंग साधन हैं। धारणा, ध्यान और समाधि योग के तीन अन्तरङ्ग साधन हैं।

४. धारणा—

चित्त को शरीर के अन्दर किसी चक्र केन्द्र में अथवा बाहर अभीष्ट स्वरूप में बाँध देना कि जहाँ भी जावे वहाँ ही अपना अभीष्ट स्वरूप ही प्रतीत हो। अभीष्ट को छोड़कर कहीं भी चित्त न जा सके। जैसे—जो कीलक में बँधी हो कितनी ही छटपटावे, परन्तु कीलक के आसपास ही घूमती रहती है दूर नहीं जा सकती। इस साधना से मन में परलौकिक धैर्य व स्थिरता आ जाती है।

५. ध्यान—

अभीष्ट स्वरूप में चित्त इतना विलीन हो जाये कि मेरा असली स्वरूप यही है। इसको छोड़कर मुझे अन्य में नहीं भटकना है। इसी में अपने आपको लीन कर देना है। जैसे तैल धारा के परमाणु बदलते हैं, परन्तु प्रतीत नहीं होते और एक बिन्दु भी अलग नहीं होता। अभीष्ट स्वरूप का एकनिष्ठ सुदृढ़ हो जाना—ध्यान है। इससे क्लेशकर सब दोष दूर हो जाते हैं। ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त होता है।

६. समाधि—

"समाधिः समतावस्था जीवात्म परमात्मनोः ।"

जीवात्मा अपने मूल स्वरूप परमात्मा में विलीन हो जाता है। अविद्या ग्रस्त चैतन्य जीव योग साधना अपनी अविद्या ग्रन्थियाँ दूर करती है। तब माया विशिष्ट चैतन्य ईश्वर में अपने आपको अनुभव करता है। उस समय तीनों गुण समानावस्था मूल प्रकृति में लीन हो जाते हैं। मूल प्रकृति परब्रह्म में विलीन हो जाती है। सत् चित् आनन्द स्वरूप चेतनात्मा अपने आप में अनन्त भाव में स्वच्छन्द होता है। जीवात्मा परमात्मा में विलीन होकर एकात्म भाव उत्पन्न होता है। इसी समाधि को धर्म मेघामृत धारा से जन्म जन्मान्तरों के विषय वासना संस्कार धुल जाते हैं। समाधि शीतान्तःकरण समाधि से उठने पर अपने आपको सफल मानव जीवन का आदर्श बना लेता है। समाधि का स्वयं स्थिति संस्कार दूसरे संस्कारों को समाप्त कर देता है, क्योंकि समाधि अवस्था में जो आनन्द चेतन सत्ता की अनुभूति हुई उससे बढ़ा चेतनानन्द सार्व सम्राट इन्द्र की पदवी मिलने पर भी नहीं मिलता। इसका प्रमाण इसी जीवात्मा को ज्ञात है क्योंकि अनन्तकाल से इस अविद्याग्रस्त जीवात्मा ने पृथ्वी के सम्राट की पदवी भी देखी और देवराज इन्द्र की पदवी का सुख भी देखा। सर्वोत्तम परम अनुभव ही समाधि है। समाधि से उठने पर—

संयम—

धारणा, ध्यान और समाधि इन तीनों का एक साथ अनुभव होना निर्बीज समाधि का फल है। व्यावहारिक अवस्था में भी समाधि अनन्यानुभूति का अनुभव होना संयम है। जो कि जीवन्मुक्ति का द्योतक है। दुःखोंसे छुटकारा और निरतिशय चेतन सत्ता की प्राप्ति निश्चित हो सकती है।

जीवन्मुक्ति—

इसी जीवन में, स्वस्थ अवस्था में, धर्म-अधर्म, ज्ञान-अज्ञान, वैराग्य-अवैराग्य, ऐश्वर्य-अनैश्वर्य अपने जीवित रहने का कारण न समझें। इस जन्म में जितने कर्म संस्कार भोगने निश्चित हुए, उनको समाप्त करना कर्तव्य है। इस प्रभु प्रेमानन्द में विभोर होकर शेष जीवन मानव मन-मन्दिर में बैठे प्रभु सेवा में व्यतीत करने का निश्चय हो जाता है। यदि शरीर की सुध रहती है तो सत्कार्य होते हैं। अन्यथा ब्रह्मलोकपर्यन्त से ऊपर उठा हुआ महानुभाव साक्षात् परब्रह्म साकार सगुण स्वरूप जीवन्मुक्त महात्मा होता है, चाहे किसी भी वेश-भूषा में हो।

संस्कार समाप्त होने पर उसके स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर तीनों स्वरूप यहीं निवृत्त हो जाते हैं। जीवात्मा हृदय में स्वयं प्रकाश परमात्मा में आत्मसात् हो जाती है। इसीलिए महान आत्मायें अजर अमर कही जाती हैं। अज्ञानी जन स्थूल शरीर छोड़कर सूक्ष्म शरीर साथ लेकर पाप पुण्य के फल सुख दुःख भोगते हैं। जब तक ज्ञान नहीं होगा, छुटकारा नहीं हो सकता।

××

अष्ट सिद्धि नव निधि के दाता

[श्री कृपाशंकर उपाध्याय एम० ए० गोरखपुर विश्वविद्यालय]

आदिकवि श्री वाल्मीकि जी द्वारा रचित रामायण तथा संत शिरोमणि श्री तुलसीदास के रामचरित मानस को योग-ऐश्वर्य के दृष्टि-कोण से यदि देखा जावे तो मारुति नन्दन श्री हनुमान जी का जीवन चरित्र ही सार्थकत्व को प्राप्त हुआ प्रतीत होता है। भगवान् श्रीराम-चन्द्र जी नर लीला करते हुए जहाँ अपने को कठिन मानव मर्यादा में बाँधे हुए हैं, वहाँ लौकिक समस्याओं के समाधान-हेतु श्रीहनुमान जी पूर्णतया श्रीराम में प्रणिधान किये हुए अपने को हर प्रकार से प्रस्तुत रखते हैं। श्री हनुमान जी भक्त अत्यन्त योगी हैं, जिनको जन्म से ही सिद्धि-लाभ प्राप्त है। कथानकों का वैज्ञानिक विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि श्री हनुमान जी का प्रत्येक क्षण योग परायण है। यहाँ सन्दर्भों की सहायता से उनके अलौकिक योग ऐश्वर्यों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना समीचीन होगा।

सर्व प्रथम अष्टांग योग के (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) परिप्रेक्ष्य से सम्बन्धित घटनाओं का अवलोकन करना होगा। एक घटना का वर्णन इस प्रकार से है कि—लंका विजय के पश्चात् भगवान श्री राम के दरबार में माता जानकी ने हनुमान जी को एक भव्य मणिमय हार दिया। परन्तु हनुमान जी उस हार के एक-एक मणि को देखते और उसे दाँतों से तोड़ फेंक देते। इस घटना से दुखित हो माता जानकी ने कहा कि हनुमान तुम यह क्या करते हो? विनीत हनुमान ने कहा माँ! मैं इन मणियों में अपने इष्ट को खोजता हूँ, उन्हें न पाकर इनकी अनर्थकता को पहचान कर, इन्हें फेंक दे रहा हूँ। जगत् जननी ने आध्या-त्मिक रूप से प्रसन्न होते हुए बाह्य रूप से एक गूढ़ प्रश्न किया कि इन जड़ वस्तुओं में तुम्हारे इष्ट का क्या प्रयोजन? हनुमान जी ने कहा माता! मेरे इष्ट तो मुझे मेरे रोम-रोम एवं जगत के कण-कण में व्याप्त दीखते हैं। परन्तु इन मणियों में नहीं दीखे इसीलिए मैं इन्हें तोड़कर देखा परन्तु उनमें भी इष्टा-वलोकन न हो सका। कहते हैं माँ एवं सभासदों के विश्वास हेतु मारुति नन्दन ने अपने वक्ष-स्थल को फाड़कर हृदयस्थ भगवान श्री राम की झाँकी का दर्शन करा दिया। इस घटना से

"वीतराग विषयं वा चित्तम्" द्वारा इष्टमय होने की अवस्था स्पष्ट ही दृष्टिगोचर होजाती है। जिसमें समाधि पूर्णतया सन्निहित है। हनुमान जी स्वयं भगवान श्रीराम के एक प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि हे प्रभो! मैं देह दृष्टि से आपका सेवक हूँ। जीव दृष्टि से मैं आपका अंश हूँ। तत्त्व दृष्टि से तो मैं आपका स्वरूप ही हूँ।

देह दृष्ट्या तु दासोऽहं,
जीव दृष्ट्या त्वदंशकः।
आत्म दृष्ट्यात्वमेवाहमिति,
मे निश्चिता मतिः॥

अब यम-नियमों के अन्तर्गत वर्णित ब्रह्मचर्य के उत्तमोत्तम साधना के स्वरूप श्री हनुमान जी के अन्य योग क्रियाओं का वर्णन श्रीराम-चरितमानस एवं पुराणों के आधार पर देखना होगा। भगवान् राम के अश्वमेध का घोड़ा जब छोड़ा गया था, उस समय यह घोड़ा एक बार देवपुर के शिव भक्त राजा वीरमणि के द्वारा बाँध लिया गया एवं बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। वीरमणि की शक्ति से प्रसन्न होकर स्वयं भगवान शंकर ने युद्ध किया और शत्रुघ्न इत्यादि को मृत प्रायः बना दिया। हनुमानजी मृत शत्रुघ्न के पास जाकर बोले—

यद्यहं ब्रह्मचर्यं च,
जन्मपर्यन्तमुत्थितः।
पालयामि सदा वीरः,
शत्रुघ्नो जीवतु क्षणात्॥

अर्थात् यदि मैं नित्य ब्रह्मचारी हूँ और मेरा ब्रह्मचर्य कभी भंग नहीं हुआ है तो शत्रुघ्न अभी जीवित हो जाय। इस प्रकार के संकल्प करने से शत्रुघ्न श्री महावीर जी के ब्रह्मचर्य व्रत के फलस्वरूप जीवित हो उठे।

श्री रामचरितमानस में सर्वप्रथम वनवासी श्रीराम जब अपहृत सीता की खोज में किष्किन्धा पहुँचे उस समय बालि-बल से भय-भीत सुग्रीव ने हनुमान जी से कहा—

अति सभीत कह सुनु हनुमाना।
पुरुष जुगल बल रूप निधाना॥
धरि बटु रूप देखु तैं जाई।
कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई॥

और तब श्री हनुमान जी—

विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ।
माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥

यहाँ से पूर्ण स्पष्ट है कि हनुमान जी ने योग बल से अपने कपि रूप को परित्याग कर मानव विप्र रूप धारण किया। इसके पश्चात् मारुतिनन्दन का महती प्रताप उस समय प्रकट होता है जब सीतान्वेषण के समय समग्र कपि यूथ समुद्र-लंघन की विकट समस्या से पराभूत हो उठा था—

अंगद कहइ जाउँ मैं पारा।
जिय संशय कछु फिरती बारा॥

अंगद के समुद्र-लंघन में अपने को असमर्थ बताने पर जामवन्त जी ने जब हनुमान जी से कहा—

का चुप साधि रहेउ बलवाना।
राम काज लगि तव अवतारा।
सुनतहिं भयउ पर्वताकारा॥

यहाँ मारुतनन्दन के योग ऐश्वर्य में महिमा सिद्ध की, गरिमा सिद्ध का अत्यन्त स्पष्ट हो गई है। इसी प्रकार लघिमा, अणिमा सिद्धियों का प्रयोग सुरसा नाम अहिन्ह कै माता के समक्ष प्रकट होता है। देखें—

जोजन भरि तेहिं बदन पसारा।
कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ।
तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥
जस जस सुरसा बदन बढ़ावा।
तासु दून कपि रूप देखावा॥
सत जोजन ते हो आनन कीन्हा।
अति लघु रूप पवन सुत लीन्हा॥
बदन पइठि पुनि बाहर आवा।
माँगि बिदा ताहि सिर नावा॥

पुनश्च जब लंका में प्रवेश करने की बात उठी तो श्री हनुमान जी ने पुनः विशेष रूप धारण किया।

'मसक समान रूपकपिधरि' और इसी रूप से उन्होंने लंका में सीतान्वेषण किया। माता जानकी जी को खोजकर भगवान श्री राम की दी हुई मुद्रिका प्रदानकर जब वे उनको सान्त्वना दे रहे थे तब माता जानकी ने एक सन्देह प्रकट किया कि—

हैं सुत कपि सब तुम्हहिं समाना।
जातुधान अति भट बलवाना॥
मोरे हृदय परम सन्देहा।
सुनि कपि प्रगट कीन्ह निज देहा॥
कनक भूधराकार शरीरा।
समर भयंकर अति बलवीरा॥
सीता मन भरोस तब भयऊ।
पुनि लघु रूप पवन सुत लयऊ॥

इन प्रकरणों में भी श्री महावीर जी का योग ऐश्वर्य प्रकट होता है। उनके पूरे चरित्र का अवलोकन करने पर स्पष्ट ही प्रकट हो जाता है कि अणिमा, गरिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व इन आठ सिद्धियों का व्यावहारिक प्रयोग श्री हनुमान जी ने प्रभु कार्य हेतु किया।

धवला गिरि को समूल उखाड़ लेना तथा श्री भरत जी के छोड़े हुए बाण से भी शीघ्र-गमन करना श्री महावीर जी के अतुल योग ऐश्वर्य का परिचायक है। राम-रावण युद्ध में पराक्रमी असुर राज रावण ने स्वयं महावीर जी के बल एवं पराक्रम का ही जहाँ तहाँ बखान किया है—

है कपि एक महा बलसीला।
आवा प्रथम नगर जेहिं जारा॥

माता जानकी जी ने श्री हनुमान जी को अनेकों बार भिन्न-भिन्न आशीर्वाद देते हुए योग सिद्धियों का भी वरदान दिया है—

अष्ट सिद्धि नव निधि के दाता।
अस बर दीन्ह जानकी माता॥

प्रभु दर्शन

[श्री राघवेन्द्र तिवारी]

मधुपर्क भर रहा था अवनी पर मन्मौतिक ।
ज्यों मधु प्रपीठ पर सूर्य किरण बैठी लौकिक ॥
प्रति पार्श्व छोर से पापाचर-संकुलित ध्वांत ।
सो गया निविड़ थक कोलाहल से परिश्रांत ॥
भर गई प्रकृति में धन्य ! सुदर्शन की सीमा ।
नव धराकाश धारी ईश्वर की शुभ प्रतिमा ॥
आ खड़े किरीटि के मध्य सुशीतल मेघालय ।
किंचित अलकों से था निःसित प्रभु का आशय ॥
शाद्वल–मृदु–हरीतिमा–रक्ताभी–पीत–वसन ।
किस महा सिंधु में ढले मोतिता हेम-नयन ॥
अंजलि भर किसलय सी विस्थापित चपल हँसी ।
वैजयन्ती की उपमा-प्रपूरिका अनगढ़ सी ॥
यह हेम-चन्द्रिका के सुमनों का मधु-पराग ।
किंचित प्रभात की देह संजा ऊषा-विहाग ॥
ला पड़ी अवनि पर प्रभु प्रकाश की यह छाया ।
है महा अनल की अनिल-धनी संसृति माया ॥
झुक गया स्वतः ही माथ महा प्रभु चरणों पर ।
जीवित है कण-कण, तृण-तृण जिनकी शरणों पर ॥

(खंडकाव्य—"शिशुः श्री राम" से)

एक सत्य घटना—

खुदा नहीं तो खुदा से कम भी नहीं

[श्री व्रजमोहन वशिष्ठ, नानौता]

यह बात सन् १९६४ की है। मई मास की ३१ तारीख थी। अनन्त श्री गुरुदेव जी का प्रोग्राम नानौता में जैन पाठशाला में चल रहा था। उस समय मैं उसी पाठशाला में प्र० अ० के पद पर कार्य कर रहा था। इसीलिये प्रोग्राम भी वहीं रखा गया, यह स्थान भी अच्छा है।

प्रोग्राम में नित्य संख्या बढ़ती जा रही थी। श्री गुरुदेव जी के श्री कमल-चरणों से अनेकों रोगी रोग-मुक्त होकर जा रहे थे। एक दिन तो एक रोगी श्री गुरुदेव जी के चरण-कमलों में ऐसा आया कि जिसके मृत्यु का समय बिलकुल निकट मालूम पड़ता था। इस रोगी को चार व्यक्ति नानौता से चार मील दूर ननेड़ा गांव से लाये थे। वह रोगी लम्बे समय से बीमार था, आराम की तो कोई सूरत नजर आती ही नहीं थी। जिस समय इस रोगी को मैंने देखा तो मेरा हृदय कांप उठा। मन ही मन श्री प्रभुजी से प्रार्थना की कि हे दीनानाथ प्रभु! यह कुशलपूर्वक हमारे यहां से चला जाये, ठीक हो या न हो, किन्तु कहीं ऐसा न हो कि इसकी मृत्यु यहां हो जाये और हमें स्याही का टीका लगे। किन्तु थोड़ा संभल कर मैंने अनन्त श्री गुरुदेव जी से इस रोगी के सम्बन्ध में प्रार्थना की, श्री महाराज जी सुनते ही तुरन्त खड़े हो गये। रोगी जो पाठशाला के भवन के बाहर था, उसे देखने चल दिये। रोगी को देखकर महाराज जी ने अपने कर-कमलों से श्री सिद्ध गुफा की कुछ रज रोगी के मुख में डाली, कुछ ही क्षणों बाद लोगों को आश्चर्य हो रहा था कि अभी-अभी न बोल सकने वाला रोगी महाराजजी से अपने जीवन-दान की किस भावना से प्रार्थना कर रहा है। रोगी लगभग एक घण्टे वहीं ठहरा होगा, इतने समय में ही काफी आराम इसने महसूस किया। इसके बाद श्री गुरुदेव जी के चरणों से

प्रसाद पाकर रोगी और साथ आने वाले वापस चले गये।

इस घटना ने आज सारे कस्बे को मानो जगा दिया हो। इस रात को श्रोताओं की संख्या से पाठशाला इस प्रकार भर गई कि पैर रखने का भी स्थान कठिन था। कस्बे के मान्य व्यक्ति भी इस रात्रि को वहाँ पधारे थे। और श्री महाराज जी का प्रवचन सुनकर गद्‌गद् हो रहे थे।

जहाँ समाज में अच्छे समझदार विद्वान व्यक्ति हुआ करते हैं, वहाँ दुष्टों की भी कमी नहीं होती। ये लोग संसार की हवा से इस प्रकार अन्धे होते हैं कि इन्हें हर बात में दोष दिखाई देते हैं सिवाय और कुछ दिखाई नहीं देता, समझाने पर भी इनको समझ में नहीं आती। ये लोग ठीक वही होते हैं जिनके विषयमें गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है कि— मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिले विरंच सम।

साथ ही इस समाज में कुछ ईर्ष्यालु और निन्दक व्यक्ति मौजूद थे। जिन्होंने कस्बे में यह वातावरण फैलाया कि ब्रजमोहन ने यहां आडम्बर की जड़ फैला दी और अपने गुरुदेव को प्रभु भगवान शब्दों से सम्बोधित करता है। यह हवा भी खूब गूँजी किन्तु समझाने तथा महाराज जी के गुरु तत्व पर प्रवचन देने पर काफी संख्या में लोग यथार्थ बात समझ चुके थे। इस बात को हिन्दू-मुसलमान सभी जाति ने सुना था कि परम योगिराज नानौता में आये हुए हैं और यह हवा भी सभी ने सुनी कि ब्रजमोहन अपने गुरुदेव को भगवान कहता है। समुदाय तैयार कर रखा है जिससे उन्हें भगवान कहलाता है। इस बात को सुनकर प्रायः हर व्यक्ति यह चाह रहा था कि हम भी उनके दर्शन करें जिनको भगवान कहा जा रहा है।

इसी इच्छा को मन में लेकर एक कस्बे का मान्य मुसलमान व्यक्ति जिसको सुलेमान पठान पुकारा जाता है। महाराज जी के दर्शन करने हेतु अकेली सुबह आया। इस व्यक्ति ने महाराज जी के दर्शन बहुत गौर से किये। बैठाने पर कुछ समय यह बैठा रहा और मन ही मन मालूम न था कि यह क्या-क्या सोच रहा था। कुछ समय बैठने के बाद श्री चरणों में दो रुपये बहुत ही प्रेम, श्रद्धापूर्वक इस व्यक्ति ने भेंट किये और दूर से ही अभिवादन करके चल पड़ा। ज्योंही यह पाठशाला से कुछ दूर बाजार में गया जहाँ हिन्दू लोग तरह-तरह की गलत बातें कर रहे थे। कुछ देर तक तो

यौगिक-चक्र और उनकी सत्यता

[श्री बारेलाल 'नीरज' साहित्य-रत्न, आगरा]

शरीरस्थ चक्र १० हैं जिनमें ८ मुख्य हैं। (१) मूलाधार (२) स्वाधिष्ठान (३) मणिपूरक (४) अनाहत (५) विशुद्धि (६) सूर्य (७) आज्ञा (८) सहस्रार। संक्षेप में वर्णन:—

(१) मूलाधार

योनि की हड्डी के नीचे, गुदा मूल से दो अंगुल ऊपर और उपस्थमूल दो अंगुल नीचे है।

(२) स्वाधिष्ठान

मूलाधार चक्र से चार अंगुल ऊपर पेड़ू के पास है। इससे 'अणिमा' और 'लघिमा' सिद्धि प्राप्त होती है।

(३) मणिपूरक

यह चक्र नाभि के समीप स्थित है।

(४) सूर्य चक्र

नाभि से कुछ ऊपर हृदय की धुक-धुकी के ठीक पीछे मेरुदण्ड के दोनों ओर इसका स्थान है। प्राण का कोष यहीं है।

(५) अनाहत

यह चक्र हृदय स्थान में रहता है। इसके मनन से खेचरी शक्ति (वायु में गमन करने की शक्ति) आती है।

(६) विशुद्धि चक्र

यह कण्ठ में स्थित है। उदान वायु का मुख्य स्थान है।

(७) आज्ञा चक्र

यह चक्र दोनों भौंहों के मध्य में त्रिकुटी में

(पिछले पृष्ठ का शेष)

यह बातें सुनता रहा, किन्तु अधिक बातें न सुनकर अब उसका मन गुरुदेव जी के चरण-कमलों में भाव-विभोर था। इन्होंने भरे हिन्दू समाज में अपनी गम्भीर वाणी से यही कहा :

ऐ हिन्दुओ! तुम्हें कुछ दीखता है कि नहीं। यदि ये महात्मा खुद नहीं तो खुदा से कम भी नहीं। अपनी बुद्धि को ठीक करो, जिससे तुम्हें अच्छे-बुरे की पहचान हो।"

इस लेख से मेरा केवल मात्र यह उद्देश्य है कि जो जिस वस्तु को धुंधला दिखाई देने लगा हो वह अपनी औषधि करे। अपनी कमजोरी को पहचानने और ज्योति प्राप्त कर अपने मार्ग में बढ़ने का प्रयत्न करे।

स्थित है। इस चक्र के दोनों ओर इडा और पिंगला हैं। यही क्रमशः वरुणा और असी हैं और यह स्थान वाराणसी है। यहाँ विश्वनाथ का वास है। वास्तव में वाराणसी (बनारस, काशी) यही है और विश्वनाथ का वास भी यहीं है किन्तु साधारण जनता उत्तर प्रदेश के काशी को विश्वनाथ का स्थान समझती है। यह सब पौराणिक ब्राह्मण वाद के कारण हुआ जो शब्द का वास्तविक अर्थ नहीं जानते हैं।

(८) सहस्रार कमल चक्र (शून्य चक्र)

इसका स्थान तालु के ऊपर मस्तिष्क में ब्रह्मरंध्र है। यहाँ सुषुम्णा का नीचे की ओर विस्तार है। अन्त में यह मूलाधार चक्र में पहुँचती है। वहाँ से कुण्डलिनी जागृत होकर सुषुम्णा के ऊपर बढ़ती है और अन्त में ब्रह्मरंध्र में पहुँचती है। ब्रह्मरंध्र में ब्रह्म की स्थिति है।

इस रन्ध्र में छः दरवाजे हैं जिन्हें कुण्डलिनी ही खोल सकती है। इस रन्ध्र का रूप बिन्दु (०) रूप है। ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रदल कमल के मध्य में एक योनि है उसका मुख नीचे की ओर है। उसके मध्य चन्द्राकार स्थान है जिससे सदैव अमृत का स्राव होता है। वह इडा नाड़ी द्वारा बहता है और मनुष्य को दीर्घायु बनाने में सहायक होता है। जो प्राणायाम से अनभिज्ञ है उनका अमृत प्रवाह मूलाधार चक्र में स्थित सूर्य द्वारा शोषण कर लिया जाता है। यदि अभ्यासी इस अमृत का प्रवाह कण्ठ को बन्द कर रोक ले तो उसका उपयोग शरीर की वृद्धि में होगा और यदि तक्षक भी उसे काट ले तो उसके शरीर में विष का संचार न होगा।

चक्रों की सत्यता

मूलाधार चक्र—

यः करोति सदा ध्यानं,
मूलाधारे विचक्षणः।
तस्य स्याद्दर्दुरी सिद्धि-
र्भूमित्याग क्रमेण वै॥

(शिव संहिता)

अर्थात्—मूलाधार चक्र पर मनन तथा ध्यान करने से उस ज्ञानी पुरुष को दर्दुरी सिद्धि (मेढ़क के सदृश) उछलने की शक्ति प्राप्त होती है और वह धीरे-धीरे पृथ्वी को सम्पूर्णतः छोड़कर आकाश में उड़ सकता है।

कहते हैं कि महर्षि दयानन्द में यह शक्ति आ गई थी और उन्होंने किसी नरेश को एकांत में दिखलाया भी था। गुब्बारे की भाँति यह सब सम्भव है।

मणि-पूरक चक्र—

इस चक्र पर चिन्तन करने से योगी पाताल सिद्ध (सर्वदा सुखदायक) प्राप्त होता है। वह इच्छाओं का स्वामी हो जाता है।

वह दूसरे के शरीर में प्रवेश कर सकता है। वह स्वर्ण बना सकता है और छिपा हुआ कोष भी देख सकता है।

'शङ्कर दिग्विजय' में यह वर्णन आता है कि श्री शंकराचार्य जी महाराज काम-विद्या को सीखने के लिए किसी राजा के शरीर में प्रविष्ट हुए थे।

दूसरा उदाहरण और भी सत्य है। सन् १९३९ की घटना है कि एक दिन पश्चिमी कमान के सैनिक कमाण्डर श्री एल० पी० फैरेल अपने सहायक अधिकारियों के साथ एक युद्ध सम्बन्धी योजना तैयार कर रहे थे। वह स्थान जहाँ पर कैम्प लगा हुआ था, आसाम-बर्मा की सीमा पर था। वहीं पासमें एक नदी बहती थी। नदी के पास ही वह योजना चल रही थी। फैरेल ने टेलिस्कोप से देखा कि एक जीर्ण-शीर्ण शरीर का वृद्ध संन्यासी पानी में घुसा हुआ एक शव को बाहर खींच रहा है। वह कठिनाई से बाहर आ पाया, यह दृश्य सब लोग देखते रहे। वृद्ध शव को खींचकर एक वृक्ष के नीचे ले गया, फिर थोड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा, कुछ पता नहीं चला कि वह युवक क्या कर रहा है। कोई १५-२० क्षण पीछे ही दिखाई दिया कि वह युवक जो अभी शव के रूप में नदी में बहता चला आ रहा था, उन्हीं गीले कपड़ों को पहने बाहर निकल आया और कपड़े उतारने लगा।

मृत का जीवित होना महान् आश्चर्य। सबने उसे घेरा और फैरेल के पास ले गये।

फैरेल ने प्रश्न किया

वह वृद्ध कहाँ है ? इस पर युवक हँसा और बोला वह वृद्ध मैं ही हूँ। लेकिन अभी कुछ देर पहले तुम शव थे, एक बुड्ढा तुम्हें खींचकर किनारे पर ले गया, फिर तुम प्रकट हो गये, यह रहस्य क्या है ? यदि तुम्हीं वह वृद्ध हो तो वह वृद्ध का शरीर कहाँ है।

युवक बोला—मैं योगी हूँ मेरा शरीर वृद्ध हो गया था। काम नहीं देता था, अभी इस पृथ्वी पर रहने की आकांक्षा तृप्त नहीं हुई थी। किसी को मारकर बलात् शरीर में प्रवेश करना तो पाप होता है, इसलिए मैं बहुत दिन से यह प्रतीक्षा में था कि कोई अच्छा शव मिले तो उसमें यह पुराना चोला बदल लूँ, सौभाग्य से वह इच्छा पूरी हुई। मैं ही वह वृद्ध हूँ, यह शरीर उस युवक का था, अब मेरा है।

फैरेल ने पूछा—तब तुम्हारा पहला शरीर कहाँ है ?

युवक बोला—पेड़ के नीचे पड़ा है। उसका दाह-संस्कार कर देना, लेकिन पकड़ लिया गया। श्री फैरेल ने इसके बाद उस संन्यासी से बहुत सारी बातें हिन्दू दर्शन के बारे में पूछीं। वह यह भी जानना चाहते थे कि स्थूल शरीर के अणु-अणु में व्याप्त प्रकाश शरीर के अणुओं को किस प्रकार समेटा जा

सकता है ? किस प्रकार शरीरसे बाहर निकाला जा सकता है और दूसरे शरीर अथवा मुक्त आकाश में रखा जा सकता है। इस अंश को तभी से भारतीय दर्शन पर विश्वास हो गया। कोषा (सेल) स्थिति नाभिक (न्युक्लियस) में जिसमें जीवित चेतना के सूक्ष्मतम् संस्कार माला के मनकों की तरह पिरोये है, स्वतन्त्र कोषा में शरीर निर्माण की क्षमता है, अमीबा के अध्ययन से स्पष्ट हो गया है। पर वैज्ञानिक अब भी यह स्वीकार नहीं करते है कि न्यूक्लियस स्वतन्त्र अवस्थाओं में भी रह सकता है। इस सिद्धान्त की पुष्टि भारतीय दर्शन का यह कायाकल्प करेगा।

अनाहद चक्र

इसका चिन्तन करने वाला भूत वर्तमान और भविष्यत काल का ज्ञाता है। वायु में गमन करसकता है, उसे खेचरी शक्ति (आकाश में जाने की शक्ति) प्राप्त होती है, कबीर के विषय में मैंने पढ़ा है कि एक बार उन्होंने अपने गुरु रामानन्द को खेचरी शक्तिके माध्यम से पराजित किया था।

शून्य चक्र

योगिराज महर्षि दयानन्द ने इस सिद्धि को प्राप्त कर लिया था, उनके दुश्मनों ने उनको जहर पिला दिया था। इसी यौगिक क्रिया के द्वारा उन्होंने सम्पूर्ण विष को शरीर से बाहर निकाल दिया था।

अन्ततोगत्वा यह सिद्ध हो गया कि यौगिक चक्रों की सत्यता सोलह आने सत्य है, अकाट्य है, क्या इसके समान संसार का कोई और भी दर्शन है, नहीं। कहीं नहीं आज का विज्ञान भी आध्यात्मिकता को सत्य मानता है। और उसे इस अध्यात्मवाद के चरणों में निकट भविष्य में अवश्य ही झुकना पड़ेगा।

धन्य है यह भारतका आध्यात्मिक ज्ञान।

सार्थक-जीवन

मन संयत कर, जग-जन-जन से,
करता जो स्नेह-व्यवहार,
अपनी भूल विदित होने पर,
करता है उसका प्रतिकार।
पाप-पङ्क में पड़ जाने पर,
कर प्रायश्चित होता है शुद्ध।
साधक यही साधना द्वारा,
पाता सुयश, श्रेय संसार।

श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'

ध्यानयोग एवं ज्ञानयोग का निरूपण

[प्रेषक—श्री मानिकचन्द अमर वैश्य, वाराणसी]

जब शरीर में ममता नहीं रहती, जब चित्त अत्यन्त निर्मल होता है और जब श्रीहरि में भक्तियोग दृढ़ होता है, तब कर्म से बन्धन नहीं होता। जब कर्म करते हुए ही मनुष्यों का मन सदा शान्त रहे, तब योगगामी सिद्धि प्राप्त होती है। भगवान् विष्णु को कर्मों का स्वामी जानो। उनमें सब कर्मों का समर्पण करके मनुष्य संसार बन्धन से छूट जाता है। यही उत्तम ज्ञान है, यही उत्तम तप है और यही उत्तम योग है कि भगवान श्रीकृष्ण को सर्व कर्म समर्पण कर दिया जाय। यही निर्मल योग है। इसीको निर्गुण कहा गया है। संसार में वही ज्ञानवान्, वही योगियों में अग्रगण्य और वही महायज्ञों का अनुष्ठान करने वाला है, जो श्रीहरि के चरणों में भक्ति रखता है। निरञ्जन भगवान् विष्णु को जान लेने पर जिसके मनोमय, कर्ममय और वाणीमय रूप को धारण किया है। मानो इन तीनों को वश में कर लिया है, वही त्रिदण्डी जानने योग्य है। अज्ञानी सदा बन्धनात्मक कर्म द्वारा बाँधा जाता है।

द्विजों को श्रुतियों और स्मृतियों के अनुशीलन से मोक्ष का मार्ग प्राप्त होता है। वह मोक्ष मानो एक नगर है, जिसके चार दरवाजे हैं। उन दरवाजों पर शम आदि चार द्वारपाल सदा विद्यमान रहते हैं। वे ही मोक्ष नगर में प्रवेश कराने वाले हैं। अतः मनुष्यों को पहले उन्हीं चारों का सेवन करना चाहिए। उनके नाम इस प्रकार हैं—शम, विचार, सन्तोष और साधुसंग। ये चारों जिसके हाथ में हैं, उसकी सिद्धि दूर नहीं है। भगवान् विष्णु की भक्ति तथा उत्तम धर्म के आचरण से मनुष्यों को योगसिद्धि प्राप्त होती है। मनुष्य ज्ञान के लिये विद्यालयों में भटकता फिरता है। यदि कहीं सद्गुरु प्राप्त हो जाय तो उनसे तत्काल निर्मल दीपशिखा की भाँति यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि हो जाती है। राग और द्वेष छोड़ कर जो क्रोध और लोभ से रहित हो गया है, जिसकी सर्वत्र समान दृष्टि है, जो विष्णु भक्त का दर्शन करता है, जिसके हृदय में जीवों के प्रति दया का भाव स्थिर है। तथा जो शौच एवं सदाचार से युक्त है, वह योगी कभी दुःख नहीं पाता। जो माया आदि के आवरणों से रहित तथा मिथ्या वस्तु से विरक्त है और कुसंग से दूर रहता है, वह योगसिद्ध पुरुष है।

योग का अभ्यास सदा करना चाहिए। विशेषतः चातुर्मास्य में योग की साधना करने वाला मनुष्य अपने सब पापों का नाश करता है जो योगी दो घड़ी भी अपने कानों को बन्द करके अपने मनको ब्रह्मरन्ध्र में लगाता है, वह पापों से मुक्त हो जाता है।

ध्यान योग से समस्त पापों का नाश होता है। जप और ध्यान ही योग का स्वरूप है। शब्द— ब्रह्म (ओंकार एवं वेद) से प्रकट हुआ द्वादशाक्षर मंत्र वेद के समान है। यथा—

> ध्यानेन सर्वमाप्नोति,
> ध्यानेनाप्नोति शुद्धताम्।
> ध्यानेन परमंब्रह्म,
> मूर्तौ योगस्तु ध्यानजः ॥
>
> (स्कन्द-पुराण २०-२६)

अर्थात् ध्यान से मनुष्य सब कुछ पाता है, ध्यान से वह शुद्धता को प्राप्त होता है, ध्यान से परब्रह्म का बोध होता है तथा सगुणस्वरूप में चित्तवृत्ति की एकाग्रता रूप योग भी ध्यान से ही सम्भव है। ध्यान योग दो प्रकार का होता है। एक सालम्ब (सविशेष) और दूसरा निरालम्ब (निर्विशेष)। साकारविग्रह नारायण का दर्शन सालम्ब ध्यान है। दूसरा जो निरालम्ब ध्यान है, वह ज्ञान योग के द्वारा बतलाया गया है। वह सबका आलम्ब है। रूप रहित अप्रमेय तथा सर्वस्वरूप जो सनातन तेज है, जिसका प्रकाश कोटि-कोटि विद्युतों के समान है, जो निष्कल, सकल एवं निरंजनमय है। आकाश के समान सर्वव्यापक है। शुद्ध स्वरूप एवं तुरीयातीत है, जिसकी कहीं उपमा नहीं है, वही परमेश्वर का निराकार स्वरूप निरालम्ब ध्यान योग के द्वारा चिन्तन करने योग्य है।

श्री विष्णु का जो साकार एवं निराकार स्वरूप है, उसमें प्रतिष्ठित होने वाले इस अक्षर, अव्यक्त, अमृत एवं सम्पूर्ण तत्त्व को बताया गया है। इस प्रकार जानकर योगी पुरुष संसार बन्धन से मुक्त हो जाता है। मनुष्य सद्गुरु के उपदेश से इस ज्ञान को पाता है। जब उसके ऊपर गुरु प्रसन्नचित्त होते हैं, तब मानों सम्पूर्ण विश्व प्रसन्न हो जाता है। जिसने गुरु को सन्तुष्ट कर लिया है, उसने समस्त देवताओं पितरों को सन्तुष्ट कर लिया। गुरु का उपदेश भगवत् प्रतिमा का पूजन, उत्तम विचार, जप में सदा तत्पर होना और ज्ञानपूर्वक कर्म का अनुष्ठान करना, यह सब मोक्ष सिद्धि का लक्षण है।

जिसके घर में एक भी योगी पुरुष एक ग्रास अन्न भी भोजन कर लेता है, वह अपने सहित तीन पीढ़ियों का उद्धार कर देता है। यदि ब्राह्मण योगी हो तो वह दर्शन से भी अवश्य सब प्राणियों की पाप-राशि का संहार कर देता है। यदि ब्रह्म-परायण उत्तम कर्मों वाला श्रेष्ठ पुरुष योग का अभ्यास करता है, सद्गुरु में भक्ति रखता है और नियमितआहार

करते हुए जो योगी परब्रह्म की समाधि में स्थित होता है, वह भगवान् विष्णु का सायुज्य प्राप्त करता है। भगवान् श्रीहरि की प्रीति से मनुष्य उनके स्वभाव में लीन हो जाता है। यह योग ज्ञान को सिद्धि प्रदान करने वाला है। सर्व प्रथम योगियों के जो सदा ज्ञान की सम्प्राप्ति होती है, उस ज्ञान सम्प्राप्ति से युक्त होकर मनुष्य योगी होता है। तदनन्तर योगी के आगे अणिमा आदि सिद्धियां उपस्थित होती हैं, परन्तु श्रेष्ठ योगी उनमें मन नहीं लगाता। योग से सम्पूर्ण दानों और यज्ञों का फल प्राप्त होता है। योग से सम्पूर्ण कामनाओं की प्राप्ति होती है। कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो योग से प्राप्त न होती हो। योगसे हृदय की गांठ नहीं रहने पाती। योगसे ममतारूपी वायु नहीं पैदा होता। योगसिद्ध पुरुष का मन कोई भी लुभा नहीं सकता। भगवान् विष्णु स्वयं ही इस चराचर जगत् में व्याप्त हैं। योगेश्वरों के परम आराध्य उन भगवान को अपने ब्रह्मरूप में स्थित जानकर मनुष्य इस मायामय जगत् का मोह उसी प्रकार छोड़ देता है, जैसे सर्प केंचुल को त्याग देता है।

मनुष्य को इन सब बातों का ध्यान करते हुए एवं श्री सद्गुरु जी के चरणों को हृदय में ध्यान रखते हुए योग-मार्ग पर चलना चाहिए, यह मार्ग जो पहले कंटकमय है, लेकिन सद्गुरु जी की कृपा से इतना सुखदायक हो जाता है कि अन्धा मनुष्य भी अपने लक्ष्य पर पहुँच जाता है। —(स्कन्द पुराण से)

सुखी और स्वस्थ रहने की दिनचर्या

सवेरे ही ईश्वरीय एलार्म बजने पर अर्थात् मुर्गे और चिड़ियों के बोलने पर बैठिये। पेशाब इत्यादि करके मुँह धोकर कुल्ला कर लीजिये। थोड़ा जल पी लीजिये। सुख से रात कटने पर भगवान को धन्यवाद दीजिये और दिन में धर्मानुकूल जीवन बिताने के लिये उससे सहायता मांगिये, फिर शौच करके नमकीन मंजन कीजिये। त्रिफला के पानी से तथा ठण्डे जल से आंखों में छींटे दीजिये। छोटी उंगली यानी कनिष्ठा से कानों को साफ कर लीजिये और अनामिका यानी दूसरी उंगली से नासिका का मल साफ कर लीजिये। बीच की उंगली यानी मध्यमा से आंखों को साफ कर लीजिये और तर्जनी से नमकीन मंजन कर डालिये और अंगूठा से जीभ और तालु दोनों स्थानों को साफ कर लीजिये। तौलिया या खद्दर के मोटे अंगोछे से बदन को रगड़ रगड़कर स्नान कीजिये। ताजा जलसे स्नान करना अधिक लाभप्रद है। जहां तक हो साबुन का प्रयोग कम कीजिये क्योंकि उसमें पड़ा हुआ कास्टिक सोडा चमड़े यानी त्वचा को हानि पहुंचाता है। सूखे वस्त्र यानी कपड़े से बदन को पोंछ डालिये और नीचे के कपड़े जैसे बनियान, जांघिया, कमीज इत्यादि को खूब धोकर धूप में सुखा दीजिये और दूसरे वस्त्र पहनकर संध्या-ईश्वराधन कीजिये तथा व्यायाम भी कीजिये और धर्म की तरफ दृष्टि रखते हुए अपना नित्य का धन्धा इत्यादि कार्य कीजिये। दिन में दो बार अन्न, शाक, फल, दूध, मीठे से बने हुए सतोगुणी पदार्थों का भोजन कीजिये। रात में भोजन करने के दो-तीन घण्टे बाद १० बजेसे पहले भगवान का ध्यान करके सो जाइये जिससे सबेरे जल्दी जाग सकें।

—श्री डॉ० शिवदयाल गुप्त

आसन

[श्री गिरीश देव वर्मा, बहराइच]

आसन के सम्बन्ध में योग दर्शन में निम्न लिखित सूत्र हैं—

स्थिर सुखमासनम् २–४६

अर्थ—जिसमें स्थिर सुख हो वह आसन कहलाता है।

प्रयत्न शैथिल्यानन्त समापत्तिभ्याम् २–४७

अर्थ—प्रयत्न की शिथिलता और अनन्त के सायुज्य से आनेसे आसन की सिद्धि होती है।

ततो द्वन्द्वानभिघातः २–४८

अर्थ—उस आसन की सिद्धि से द्वन्द्वों की चोट नहीं लगती।

आसनों को दो कोटियों में विभाजित किया जा सकता है। एक वे आसन हैं जो ध्यान साधना के लिए किये जाते हैं जैसे सिद्धासन, पद्मासन, स्वास्तिकासन। दूसरे प्रकार के आसन वे हैं जिनमें शरीर के अंगों को तोड़ा मरोड़ा जाता है और पशु पक्षियों का आकार का बनाया जाता है, जैसे मयूर आसन, कुक्कुटासन, उष्ट्रासन आदि आदि। शरीर को पुष्ट व नीरोग बनाने में इन आसनों की उपयोगिता है। उपर्युक्त पातंजलि सूत्रों पर विचार करने पर पता चलता है कि राजयोग में वे ही आसन आते हैं जिसमें सुख पूर्वक काफी देर तक बैठा जा सके। दूसरे सूत्र के अनुसार उस आसन में दो गुण और होने चाहिये। एक प्रयत्न की शिथिलता, दूसरे अनन्त का सायुज्य। जब सुखपूर्वक आसन पर बैठ लिया जावे तब शरीर में किसी प्रकार की हरकत नहीं होनी चाहिए। जैसे खूंटा गाड़ दिया जाता है उसी तरह साधक को बिना हिले-डुले बैठे रह जाना चाहिए। सब नाड़ियां क्रिया शून्य हो जानी चाहिये। अनन्त का अर्थ विभुत्व से है। जैसे सर्व व्यापक वस्तु हिल-डुल नहीं सकती, उसी प्रकार अनन्त को लक्ष्य में रखते हुए गति शून्य होकर बैठना चाहिए।

राजयोग के अनुसार सिद्धासन, पद्मासन आदि ध्यान परक आसनों का अभ्यास करना चाहिए। जब अभ्यास को इतना बढ़ा ले कि एक आसन पर बगैर हिले-डुले ४ घण्टा ४८ मिनट या कम से कम २ घण्टे २६ मिनट बैठ लेवें तो आसन की पूर्णाङ्ग सिद्धि मानी जाती है। इसके बाद अनमय शरीर का संयमन करके उसी आसन में बिना गिरे सो सकना, यह आसन की अंतिम सिद्धि है।

एक आसन पर बगैर हिले-डुले २ घण्टा २६ मिनट तक बैठने का अभ्यास बना लेना चाहिए। इसका यह मतलब नहीं है कि उतनी देर जबरदस्ती बैठा जावे। २ घण्टा २६ मिनट

तक सुखपूर्वक बैठना चाहिए। इस बीच शरीर के किसी अङ्ग में कोई दर्द नहीं होना चाहिये और आसन से उठने के बाद भी किसी प्रकार का क्लेश या झुनझुनाहट नहीं अनुभव करना चाहिए।

जब एक आसन पर इस प्रकार बैठने का अभ्यास हो जाता है तब उसका वास्तविक लाभ मिलने लगता है। तीसरा सूत्र यह बताता है कि आसन सिद्ध हो जाने की क्या पहिचान है? महर्षि ने बताया कि आसन सिद्ध हो जाने पर द्वन्द्वों का आघात नहीं लगता, अर्थात् जो योगी आसन सिद्ध कर लेता है उसे सर्दी, गर्मी आदि क्लेशों से छुट्टी मिल जाती है। ४ घण्टा ४८ मिनट तक स्थिर सुखपूर्वक बैठने के बाद साधक द्वन्द्वातीत हो जाता है।

अब हम आसन की साधना के सम्बन्ध में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करेंगे और यह देखेंगे कि आसन की उपयोगिता योग साधन में किस प्रकार की है। आसन को सिद्ध करने की सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि साधक की भूख कम हो जाती है। भूख क्यों कम हो जाती है इसको समझने के लिए श्वास प्रश्वास की क्रिया पर थोड़ा विचार करना पड़ेगा।

जो श्वास बाहर जाता है उसे प्रश्वास या प्राण कहते हैं और जो श्वास अन्दर जाता है उसे प्रश्वास या अपान कहते हैं। प्राण में कारबोनिक एसिड गैस की औसत प्रायः ४·२८ फीसदी होती है। दिन की अपेक्षा रात्रि में यह शरीर से अधिक निकल जाती है। भूख की इच्छा, अनिच्छा, कारबोनिक एसिड गैस के शरीर से अधिक और कम निकलने पर निर्भर होती है। शरीर के हिलने-डुलने, व्यायाम करने, चलने, फिरने, भोजन करने आदि से बैठे रहने की अपेक्षा यह गैस शरीर से अधिक मात्रा में निकल जाती है और इसीलिए भूख अधिक लगती है। भूख-प्यास की इच्छा भी अभ्यास में बाधक हुआ करती है, इसीलिए योगका तीसरा अङ्ग आसन ठहराया है, जिसमें बिना किसी प्रकार की गति किये शान्ति के साथ देर तक बैठा जा सके और उसी साधन में भूख बाधक न हो।

मिताहार—

भोजन करने के बाद कारबोनिक एसिड गैस के शरीर से निकलने की मात्रा, भोजन न करके भूखा रहने की अपेक्षा अधिक बढ़ जाती है। गोलबोन नामक विद्वान के अनुभव में यह बात आई है कि जब वह उपवास करता था तो केवल १२१० घन इंच शुद्ध वायु काम में लाता था, परन्तु भोजन करने के बाद पाचन क्रिया के समय में १६०० घन इंच प्राण प्रद वायु की आवश्यकता पड़ गई। योगी लोग इसीलिए मिताहारी और अल्पाहारी होते हैं ताकि कारबोनिक एसिड गैस अधिक न निकले और भूख बाधक न बने। कोई-कोई अज्ञानी

दिन में कुछ भी नहीं खाते, केवल रात्रि में थोड़ा सा भोजन लेते हैं, ऐसे योगी नक्त भोजी कहलाते हैं।

गुफाओं में रहकर अभ्यास करना—

उष्ण ऋतु की अपेक्षा शीतकाल में कारबोनिक एसिड गैस शरीर से अधिक निकलती है, इसलिए सर्दियों में भूख अधिक लगती है। इसी कारण पुराने लोग शीत में रहने वाले पशुओं की भांति, गुफाओं में रहा करते थे। जितना ही शीतोष्ण बाहर का है यदि उतना ही शीतोष्ण प्राणियों के भीतर का हो, तो भूख कम लगेगी। जो स्थान चारों ओर से घिरे होते हैं। जैसे गुफा आदि उनमें रहने वाले कारबोनिक एसिड गैस कम खर्च करते हैं और गुफा में रहकर साधना करने से भूख कम लगती है। खुले में रहने वालों के शरीर से गैस अधिक निकलती है। इसीलिये हमारे पूज्य गुरुदेव अनन्त श्री सिद्धयोग योगिराज श्री रामलाल महाप्रभु जी ने सिद्ध गुफा (सवाई) में साधना किया था।

कम बोलना अथवा मौनावलम्बन—

यदि मनुष्य मौन रहे तो उसकी अपेक्षा नियत समय में बोलने अथवा उच्च स्वर से बोलने से गैस अधिक खर्च होती है। इसीलिए योगी मौन रहना अधिक अच्छा समझते हैं। इससे वे भूख की चिन्ता से मुक्त रहते हैं।

चित्त की एकाग्रता की उपयोगिता—

चित्त से काम लेने की अपेक्षा उसे किसी किसी स्थान विशेष, भ्रू मध्य या हृदय कमल में एकत्रित कर देने से कारबोनिक एसिड गैस कम खर्च होती है। इसीलिए योगी लोग चित्त की एकाग्रता का अभ्यास अधिक करते हैं। इस साधन से भूख की मात्रा कम हो जाती है। जितनी अधिक देर तक एक आसन पर बैठकर चित्त को एकाग्र करने का साधन किया जायेगा, उतनी ही गैस की मात्रा कम व्यय होगी।

एक परीक्षण—

डा० एस० सी० पाल ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि एक बार योम्बस नामक जन्तु पर परीक्षण किया गया। उसे आठ घन्टे तक गति शून्य अवस्था में रखा गया। फल यह हुआ कि उसके श्वास गहरे व लम्बे हो गये। उन श्वासों की मात्रा एक मिनट में ८५ होगई। वह जन्तु उसी अवस्था में १४० मिनट तक जब रह चुका था उसके श्वासों की संख्या एक मिनट में केवल ४६ रह गई। उसके बाद उसे उसी अवस्था में १८० मिनट तक रखा गया तो उसके श्वासों की गिनती मिलने में अयोग्य हो गई।

इससे स्पष्ट होता है कि चलने फिरने और शारीरिक परिश्रम करने की अपेक्षा, चुपचाप

बैठ कर कुछ न करनेसे भूख कम लगने लगती है और श्वासों की संख्या कम हो जाती है। जब श्वास कम हो जाती है तब गैस के व्यय की मात्रा भी कम हो जाती है।

जलाशय के किनारे अभ्यास की उपयोगिता—

पृथ्वी के उस भाग में जहाँ नमी अधिक हुआ करती है, वहाँ के रहने वाले, सूखे भाग में रहने वालोंकी अपेक्षा कार्बोनिक एसिड गैस कम खर्च करते हैं। इसलिए भूख कम लगती है और साधना ठीक तरह से चलती है। मनु ने अपने धर्म शास्त्र में इसीलिए जलाशय के निकट संध्या आदि करने का विधान किया है।

पहाड़ पर अभ्यास की उपयोगिता—

समुद्र के धरातल की अपेक्षा उससे ऊँचे स्थान पहाड़ आदि में, वहाँ के रहने वाले कार्बोनिक एसिड कम व्यय करते हैं, इसलिए पहाड़ तपस्या और योग साधन के लिए अधिक उपयोगी स्थान समझे जाते हैं।

शीतल जलपान—

जो लोग ठण्डा पानी अधिक पीया करते हैं वे कार्बोनिक एसिड अधिक खर्च किया करते हैं, इसीलिए अभ्यास करने वाले अल्पाहार के साथ अल्प जल ही पीया करते हैं।

अधिक मोटेपन की अनुपयोगिता—

जो लोग अधिक मोटे और भारी होते हैं वे भी अधिक कार्बोनिक एसिड खर्च करते हैं और इसीलिये उन्हें अधिक और अनावश्यक भूख लगा करती है। योगी अपने को सदैव हल्का और चुस्त बना लिया करते हैं कि भूख का क्लेश बाधक न हो। अधिक खाने वाले एक आसन पर देर तक बैठ ही नहीं सकते। मोटे आदमी पद्मासन लगाने में भी असमर्थ हो जाते हैं।

अधिक भोजन से आयु का ह्रास—

अधिक भोजन करने से आयु भी कम हो जाती है। कतिपय दीर्घजीवियों को देखें तो पता चलता है कि वे अल्पाहारी थे और उनका जीवन बहुत संयमित था। उदाहरण के लिए देखिये :—

नाम व्यक्ति	आयु
लेम्फ एस्कोली	१०२ वर्ष
जेम्स दी हरमिट	१०४ वर्ष
आरसेनियस	१२० वर्ष
साइमन	११२ वर्ष
रोमोल्ड	१२० वर्ष

डा० पाल ने लिखा है कि इन लोगों का भोजन २४ घंटे में केवल १२ औंस रोटी और जल था। इस १२ औंस रोटी में निम्नलिखित वस्तुएँ होती थीं :—

जल	=	२१३४ ग्रेन
कार्बन	=	१५३४०८ ग्रेन
प्राणप्रद वायु	=	१५२४ ग्रेन
हाइड्रोजन	=	२०५·२ ग्रेन
नाइट्रोजन	=	७२ ग्रेन
नमक	=	१२० ग्रेन

इससे स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त पुरुषों ने १५०० ग्रेन से लगभग कार्बोनिक एसिड खर्च किया। उनकी श्वास, प्रश्वास की मात्रा एक मिनट में केवल ६ बार थी। कम भोजन करने से श्वास की संख्या कम हो जाती है और शरीर का ह्रास कम हो जाता है, किन्तु आयु बढ़ जाती है।

आसन के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है उससे आसन की उपयोगिता भलीभांति प्रकट होती है। ×××

समाधिजाः सिद्धयः

[श्री हीरालाल शास्त्री]

जन्मौषधि मन्त्र तपः,
समाधिजाः सिद्धयः।

योग दर्शन

संसारी पुरुष के लिए संसार में भिन्न स्थान पर किस में ईश्वर प्रेरणा से जब वैराग्य का अंकुर उत्पन्न होकर धीरे-धीरे दोनों तरफ से (इधर संसार से वैराग्य और ईश्वर की तरफ को आकर्षण) बढ़ते जाते हैं इस प्रकार वृद्धि होते हुए प्राणी अपनी भावना की सिद्धि के लिये प्रयत्नशील होता है और उसमें अध्ययन, सत्संग आदि को कमी से प्रायः पढ़े या सुनी हुई सिद्धियों के आकर्षण की अपेक्षा करता है और जब कोई सौभाग्यवश ईश्वर कृपा से चमत्कारिक सिद्धि अपनी आँखों से प्रत्यक्ष कर लेता है तब उस मार्ग में प्रवृत्त होने के लिये दृढ़ संकल्प होता है। प्रायः इसी आधार पर इस कलियुग में जानते हुए भी वेषधारी साधुओं के चक्कर में पड़कर समय और धन का दुरुपयोग हुआ देखकर पश्चाताप करता है। इस प्रकार होते होते अन्तमें योग की तरफ प्रवृत्त होता है। वास्तव में योग हर प्रकार से मनुष्य को सुख सुविधा प्रदान करते हुए अन्त में मुक्ती प्राप्ति करा ही देता है। परन्तु योग साधन वास्तव में कठिन है इस मार्गमें साधन मिलना अत्यावश्यक है। आधुनिक संसार में योगाश्रम भारत में ही क्या विदेशों में भी अधिक संख्या में खुलते जाते हैं। परन्तु उनमें सफलता किस को कहाँ तक मिली या मिल सकती है, यह बात अभी तक अँधेरे में ही चल रही है वैसे समाचारों में भी अमेरिका, जर्मन, जापान आदि देशों में भी प्रचार-बाहुल्य सुना जाता है। ऐसी दशा में मनुष्य कि कर्तव्य विमूढ़ होकर अवगुणों की बुराई करने में अपनी बुद्धि को पर्यापत कर देता है जो कि सभी प्रकार अनुचित और अनभीष्ट है इसके लिये ही भगवान् पतञ्जलि ने योग दर्शन में भी पूर्व ही स्पष्ट कर दिया था कि

"जन्मौषधि मन्त्र तपः समाधिजा सिद्धयः"

अर्थात्—सिद्धि प्राप्त करने के लिए जन्म, औषधि, तप, समाधि यह चार उपाय बतलाये हैं इन चार में एक भी होने पर अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है। परन्तु यह चारों प्रकार आधुनिक कलियुग या अधर्म बाहुल्य युगमें स्वभावतः

असम्भव न माने जाँय तो कठिन अवश्य है, फिर पूर्णता कैसे हो सकती है। इसका दिग्दर्शन अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार योग साधक-बन्धुओं के सुभीते के लिए मोटे तरीके पर लिखे देता हूँ। आशा है मेरी यह कटु धारणा को भलीभाँति विचार कर क्षमा करने की कृपा अवश्य करेंगे।

जन्म—

सर्व प्रथम ग्रन्थकार ने जन्म को ही लिखा है। उसकी विशेषताएँ विचारें, आजकल आचरण भ्रष्टता कहाँ तक पहुँच गई है। यह आप लोगों से किसी प्रकार छिपी नहीं है। स्वराज्य के समय से अंग्रेजियत की जो वृद्धि हुई है उसे विचारशील भारत प्रतिदिन के प्रत्यक्ष दर्शन से दुःख अनुभव करता है। खान पान, वस्त्र, शिक्षा, वेश-भूषा आदि सभी बातों में अंग्रेजियत का ही बोलबाला है। बहुत से सज्जन यह भी कहते सुने जाते हैं कि यह सरकार का दोष है। मेरे विचार से इसलिये अनुचित है कि सरकार जबर्दस्ती किसी पर कोई बात नहीं लाद रही है सरकार भी आपके वोटों से ही बनती है आप न चाहें तो जैसा सुधार आपको अभीष्ट होकर सकते हैं। मगर सरकार में एक दो की सुनवाई नहीं हो सकती इसके लिए भी कानून है, एक साथ मिलकर एक-तिहाई जनसंख्या जो चाहे सो कर सकती है जैसे आपकी स्मृति के भी यह बात है।

"संघेशक्तिः कलौयुगे," अर्थात् कलियुग में संगठन में ही शक्ति रहेगी। अतः यह आपका कर्तव्य रहा कि मिलकर चलिये, सब-सबका भला चाहें, सब-सबके दुःख में बिना मांगे सहयोग दें। दूसरे के लड़का-लड़की को अपने बच्चों के समान ही हृदय से मानो, स्त्रियों को माता के समान मानो, दूसरे की चल-अचल सम्पत्ति या अधिकार हड़पने या नष्ट करने का कभी विचार भी न करो, यह सब यह सब सच्चे हृदय से ही होना चाहिये, तब अवश्य ही जन्म की सिद्धि प्राप्त होने में विलम्ब होने का कारण न होगा, क्योंकि ऐसी दशा में मनुष्य या स्त्री सदाचार परायण होंगे, उस समय जो बालक का जन्म होगा, वह सच्चे वीर्य व रज से होकर परम पवित्र होगा, बुद्धि शुद्ध होगी, सच्चरित्र होगा, व्यभिचार का भाव आवेगा ही कहाँ से। फिर पूर्व-संस्कार-वश जो जन्म परिपाटी कही जाती है। वह उत्तरोत्तर शुद्ध होती जायगी। प्रायः सभी बच्चे चरित्रवान व योगी महात्मा होंगे। शरीर, इन्द्रियां, चित्त आदि सभी में परिवर्तन होगा। यह सब बातें इतिहास पुराणों में आप पढ़-सुन ही चुके होंगे। इसी आधार पर आप वेदव्यास, नारद, शुकदेव आदि को आप भी विशिष्ट पुरुष या दैवशक्ति सम्पन्न समझ ही रहे हैं।

अब आप अनुमान लगाइये कि इस फैशन

परस्त युग ने बढ़-लिखा, स्त्रियों का ऑफिस में मनुष्यों के साथ काम करना आदि सभी उपाय चरित्रहीन बनाने के चल रहे हैं। संक्षेप में इसी प्रकार और भी बातें समझ लीजिए, सब लिखने में तो समाप्त ही नहीं होगी।

औषधि—

औषधियाँ भी सिद्धि देने वाली हैं। बहुत सी औषधियां जैसे श्री हनुमान जी लक्ष्मण के लिए लंका में ही विविध वनस्पतियों वाला पर्वत समूचा ही उखाड़ कर ले आये थे। अब न ऐसे ज्ञाता है न वहाँ पहुँचने वाले हैं। फिर भी पारद आदि अब भी औषधियां हैं जिनसे सिद्धि प्राप्त हो सकती है।

मन्त्र—

आगमों तन्त्रों में मन्त्रों का बाहुल्य है उनसे भी सिद्धियाँ मिलती हैं। आजकल भी अभीष्ट सिद्धि चाहने वाले स्वयं या पण्डितों से मन्त्र-जाप के द्वारा लाभान्वित होते हैं। मन्त्रों का सदुपयोग वेद और तन्त्रशास्त्र, साबरी नाम से प्राप्त होता है।

तप—

कायिक, वाचिक, मानसिक भेद से तप तीन प्रकार के कहे गये हैं। यदि मनुष्य तप करने के लिए निश्चय करले तो अपने भी आशानुसार धार्मिक भावना की दृढ़ता से इनमें से कोई भी तप करे तब भी करा मनवाञ्छित सिद्धि होती है।

विशेष—

परन्तु इन सब कारणों के लिए धार्मिक दृढ़ता अवश्य होनी चाहिए जिसकी बुद्धिमें धर्म कुछ नहीं है ढोंग है वह यदि कोई सिद्धि चाहे तो मेरी समझ से उसे सम्भवतः आंशिक सफलता भले ही मिल जाय पूर्ण सफलता मिलना दुर्लभ है क्योंकि यह सब धर्म पर ही आश्रित है इसी आधार पर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह आवश्यक प्राप्यों में धर्म को ही विशेष मानकर उसका पहिले आया है आंशिक सफलता मैंने इसलिये बतलाई कि ईश्वर का दरबार सत्य पर ही आश्रित है।

सत्यमेव जयते नानृतं,
सत्येन पन्थाविततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामायत्र,
तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥

मुण्डकोपनिषत्—सत्य की ही विजय होती है झूठ की नहीं देवयान नामक मार्ग सत्य से ही परिपूर्ण है। जिस मार्ग से पूर्ण काम सिद्ध ऋषिलोग गमन करते हैं वह सत्य का उत्कृष्ट स्थान है अतः परिश्रमके अनुसार आंशिक सफलता सम्भवतः मिल जाय पूर्ण सफलता मिलनी तो असम्भव ही है अतः इस योग में प्रवृत्त होने वाले सनातन धर्म के लिए पूर्ण आस्था रखतेहुए इन सिद्धियों को प्राप्त करने की चेष्टा करें उसके अभाव में परिश्रम व्यर्थ होने की सम्भावना ही अधिक है इसीलिए योगदर्शन

साधन पाद के आरम्भ में ही ग्रन्थकर्ता ने सफलता के लिये साधन शील पुरुषों को—

तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोग ।

अर्थात्—योग सिद्धि प्राप्ति के लिये तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान करनेको बताये हैं। यह इसलिये लिखा है कि आजकल पूर्ण आधात धर्म पर हो ही रहे हैं। उनका ध्यान रखकर योग साधन में प्रवृत होने पर ही सफलता की आशा करनी चाहिए।

समाधि—

समाधि की सिद्धि के लिए धारणा, ध्यान, समाधि यह तीनों अंगों का साथ ही प्रयत्न होना आवश्यक है, क्योंकि धारणा के बिना ध्यान नहीं और ध्यान के बिना समाधि नहीं हो सकती है।

अर्थात्—चित्त का जब एक स्थान पर लगातार ठहरना होना सिद्ध हो जाता है तब वही धारणा कही जाती है। "देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।" यह सूत्र योगदर्शन का है और इस प्रकार धारणा सिद्ध हो जाने पर ही जब चित्त अधिक समय तक एक ही स्थिति में रहता है, इधर-उधर चलायमान नहीं होता है अर्थात् बीच में कोई भी वृत्ति नहीं उठती तब उसे ध्यान कहते हैं।

इसी प्रकार ध्यान करते-करते जब चित्त ध्येयाकार में परिणत हो जाता है और अपना स्वरूप शून्य सा हो जाता है उसका नाम समाधि है।

तदेवार्थमात्र निर्भासंस्वरूप शून्य मिव समाधिः।

इस प्रकार जो क्रिया बनती है वह समाधि कही जाती है। अर्थात् धारणा, ध्यान, समाधि इन तीनों का क्रमशः एक साथ साधन होने पर ही समाधिक्रम बनता है, इसीलिए इन तीनों को संयम के नाम से कहा है। त्रयमेकत्र संयमः। अर्थात् इन तीनों का एकत्र होना संयम कहा जाता है।

इस प्रकार साधक महात्मों को सिद्धि प्राप्ति के लिए, औषधि, मन्त्र, तप, समाधि आवश्यक बतलाई है। ऐसी दशा में साधन पाद में तपः स्वाध्याये ईश्वर प्राणिधान जो क्रियायें करने को बतलाई गई है, उनमें स्वाध्याय शब्द विशेष बुद्धिगम्य है। इस का अर्थ अपना भी है अर्थात् वेद, शास्त्र आदि का अध्ययन अपना कर्तव्य, अकर्तव्य निर्धारण के लिए करें और भी सामयिक अपने ज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों अखबार आदि का अध्ययन है तथा अपना अध्ययन भी निरन्तर ही करते रहना चाहिए आज मैंने कौन-कौन से कार्य उचित या कौन से अनुचित किए और हमारे लिये हितकर है और हानिकारक है। शुभ, अशुभ, पाप, पुण्य सभी कर्मों के लिये मनुष्य का कर्त्तव्य है कि जिम्मेवारी से अपना दृष्टिकोण इस प्रकार बनावे जो अपना साधन उच्च आदर्श से चलता रहे भगवान ने गीता में भी कहा है—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संग वर्जित। निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।

भगवान की इस आज्ञा का पालन योग साधक के लिये आवश्यक कर्तव्य है। वास्तव में साधना कुछ वर्षों में या एक जन्म में ही नहीं पूरी हो जाती है अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो-

यान्तिपरागतिप्रभु, जब कई जन्मों तक के लिये भगवान को जाना है तब अधिक समय तक विश्वास और श्रद्धा पूर्वक यह सब कार्य नहीं किये जायेंगे तब सफलता तो दूर रही विचलित होकर मार्ग भ्रष्ट हो जाने पर कहीं का कहीं साधक कर्मानुसार पटक दिया जाता है अतः सतत्परतापूर्वक योग साधन किया जाय। इसीलिए आपके सामने यह प्रार्थना की गई है जब तक ईश्वर पर पूर्ण श्रद्धा, धर्म पर दृढ़ता-चरित्र की शुद्धता और ब्रह्मचर्य का पालन आदि क्रियायें सार्थक नहीं बनाओगे तब तक सिद्धि असम्भव ही समझिये।

इन सबकी सिद्धता के लिए गुरु की आज्ञा कर्तव्य परायणता अत्यावश्यक है गुरु का नाम ही साधारण बोलचाल में भ्राता के लिये प्रयुक्त होता है। अतः गुरु पर पूर्ण विश्वास करके उनकी सेवा, सुश्रुषा से प्रसन्न करके योगसाधन में लगने पर सफलता करामलकवत है इसी कारण ईश्वरीय कृपावश बिना पुरुषों के पास सिद्धि प्राप्ति का कोई उपाय नहीं होता उनके लिये ही तप शब्द का प्रयोग किया गया है अर्थात् जब ऐसे साधक तप में संलग्न होकर तन्मयता से प्रयत्नशील होंगे तब सफल होंगे इसीलिए भगवत गीता में कहा है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

—० प्रसन्नता का लाभ लीजिए ०—

प्रसन्नता के साथ भोजन करने से उसका परिपाक शीघ्र ही जाता है। ईर्षा, द्वेष, मद क्रोध ईर्ष्या, लोभ-संकुल मन से भोजन करने से भोजन नहीं पचता और उसका लाभ शरीर को नहीं मिलता। माधव निदान में लिखा है कि ईर्षा, भय, क्रोध, लोभ-पीड़ित मनुष्य का भोजन भले प्रकार नहीं पचता। चिन्ता, शोक, भय, क्रोध, दुःख, निद्रा सम्बन्धी अवस्था (रात्रि-जागरण, दिवाशयन, अधिक शयन) इन कारणों के होने पर पथ्य और मात्रा में किया हुआ भोजन भी नहीं पचता। स्वास्थ्य के इच्छुकों को जहाँ संध्योपासन श्रद्धापूर्वक करना आवश्यक है वहां प्रातः सायं कुछ समय अपनी रुचि अनुसार मनोरंजन, खेल-कूद में भी लगाना चाहिए। छोटे बालकों के साथ खेलने से मनुष्य को प्रसन्नता, हर्ष और स्वाभाविक निर्दोष हास्य प्राप्त होता है। इसी कारण महर्षि दयानन्द, महात्मा गांधी तथा अन्य साधु-सन्त महापुरुष बालकों के साथ मिल-जुलकर प्रसन्नता को प्राप्त करते रहे।

मनुष्य के लिए सदैव प्रसन्न रहना आवश्यक है। क्यों प्रसन्न रहना चाहिये? इसका वैज्ञानिक समाधान यह है कि प्रसन्नता से मनुष्य की संकल्प-शक्ति विकसित और पुष्ट होती है। इससे मनुष्य न केवल स्वास्थ्य सम्बन्धी किन्तु सभी प्रकार की सफलता प्राप्त किया करता है। इस प्रकार विश्व भर के नर-नारी प्रसन्न रहकर संसार की हर्ष-सम्पदा को बढ़ा सकते हैं। यही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है। यह उद्देश्य उत्तम सात्विक संकल्प-शक्ति और उत्तम स्वास्थ्य से प्राप्त होता है जिसका सर्वोत्तम साधन श्रद्धा-सहित नित्य प्रातः सायं संध्योपासन अर्थात् ईश्वर आराधना करना है।

—सु० श्री सुशीला कुमारी

जीवन-तरणी

[श्री देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य']

कहीं और था जाना मुझको
कहीं और तू लेकर आया
मन केवट जीवन-तरणी को
तूने औघट घाट लगाया।

भूल गया भ्रम के भँवरों में
तूने सीधी राह न जानी
था मेरा गन्तव्य कहाँ, यह
जान न पाया तू अज्ञानी।

इन उत्ताल तरङ्गों में तू
व्यर्थ बहाकर मुझको लाया
बना मुझे पथ-भ्रष्ट बावले!
बतला क्या तूने फल पाया?

बार-बार बरजा था मैंने
समझाया था धीरे-धीरे
और कहा था ले चलना मन
मेरी तरणी गङ्गा-तीरे।

पर तू मुझे यहाँ ले आया
जहाँ कभी था लक्ष्य न मेरा
अन्धकार का राज यहाँ है
सुना न होता कभी सवेरा।

अब भी लौट मूढ़ मन मेरे
सोच समझ कर अपनी करणी
किसी रम्य तट पर ले चल तू
लेकर मेरी जीवन-तरणी।

सदाचार सत्पुरुषों का भूषण है

[श्री सूर्यवल्लभ त्रिपाठी]

प्राचीन भारतीय साहित्य सदाचार पूर्ण जीवन बिताने की आवश्यकता तथा उपयोगिता के उल्लेखों से भरा पड़ा है। नैतिक व्यवस्था के देवता वरुण की प्रार्थना अत्यन्त विनम्र शब्दों में इस उद्देश्य से की जाती थी कि वह निष्ठापूर्वक सत्य तथा मांगलिकता से पूर्ण जीवन बिताने में मनुष्य की सहायता कर सके। ऋषि ने बताया है—

हे परमेश्वर ! हम सम्पूर्ण प्राणियों में अपना ही आत्मा समाया हुआ देखें, किसी से द्वेष न करें और जिस प्रकार एक मित्र दूसरे मित्र का आदर करता है वैसा ही हम भी सदैव सभी का सत्कार करें।

सद्जीवन की व्याख्या स्वरूप महाभारत के वन-पर्व में विचारपूर्ण विवरण मिलता है। महाराज युधिष्ठिर से एक यक्ष पूछता है। 'भगवन् ! दिशा क्या है ?" इस पर युधिष्ठिर ने बड़ा ही शिक्षाप्रद उत्तर दिया है कि— "जो शुभ है वही दिशा है"। अर्थात् मनुष्य जीवन का उद्देश्य ही सदाचार है और सद्-जीवन जीते हुए, बिना किन्हीं कष्ट-साध्य साधनों के वह जीवनमुक्ति प्राप्त कर सकता है। जिसके व्यवहार-क्रिया और सम्भाषण आदि में मधुरता होती है उन्हें इस संसार में सुखोप-भोग की कमी नहीं रहती।

सदाचार का अर्थ है मानव-मात्र की भलाई की भावना रखना। सबके हित को अपना हित समझ कर तदनुकूल आचरण करना। शास्त्रकार के शब्दों में:—

सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

अर्थात् इस संसार में सबको सबके प्रति सद्भावना रहे। यह विचार रखना चाहिये कि सभी सुखी हों, सभी नीरोग हों, सभी आत्म-कल्याण की प्राप्ति करें और किसी को दुःख न हो। यह शुभ कामनायें ही सद्जीवन का मूल हैं। इसीमें प्राणि-मात्र का हित समाया हुआ है।

सदाचार घाटे का सौदा नहीं। कर्त्ता की भावना के अनुरूप सदाचार का लाभ मिलता अवश्य है। सहयोग, सहानुभूति, स्नेह, आत्मी-यता तथा मैत्री की उसे कमी नहीं रहती, जिसके जीवन में सब के कल्याण की भावनायें जाई हुई हों। इसके विपरीत जिनके जीवन दुराचारपूर्ण रहे हैं उन्हें उसका दण्ड भी अव-श्यमेव भोगना पड़ा है। रावण अपने असंख्य

(शेष पृष्ठ ४१ पर)

विरक्त-जीवन का प्रभाव

[प्रेषक—श्री जगदीशचन्द्र वर्मा]

—जातक कथा-सार

एक बार भगवान बुद्ध नगर के बाहर एक विशाल उद्यान में ठहरे। उनके दर्शन के लिए छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, धनी-गरीब सब जाते थे। एक दिन वहाँ का राजा प्रातःकाल अकेला ही पैदल जा रहा था। उसी मार्ग से उनके दर्शन को एक अन्य धनी व्यापारी भी जा रहा था।

उन लोगों को रास्ते में एक माली मिला। माली के हाथ में एक सुन्दर सुगन्धित कमल था। शरद ऋतु समाप्त हो गई और शिशिर ऋतु आरम्भ होगई थी। कमल मिलना कठिन हो गया था। राजा और धनी व्यापारी दोनों को लगा कि इस सुन्दर कमल को खरीद कर भगवान बुद्ध के चरणों में अर्पित करें।

व्यापारी माली से पूछने लगा—यह फूल कितने का है?

राजा बोला—मैं दो आने देता हूँ। मुझे दे दो।

व्यापारी बोला—मैं चार आने देता हूँ।

राजा ने कहा—मैं आठ आने देता हूँ।

साहूकार व्यापारी बोला—मैं रुपया देता हूँ।

इस पर कमल की कीमत बढ़ने लगी। प्रतिस्पर्धा होने लगी उन दोनों में, इसी बीच में माली के मन में एक विचार आया—यह लोग जिसके पास कमल ले जाना चाहते हैं यदि मैं ही उसके पास कमल ले जाऊँ तो मुझे इन दोनों से ज्यादा कीमत मिलेगी।

माली के इस विचार ने निश्चय का रूप लिया। उसने उन दोनों से कह दिया मैं यह फूल किसी को नहीं दूँगा। आप लोग जाइये। अपना रास्ता लीजिये।

राजा और व्यापारी दोनों चुपचाप आगे बढ़ गये। माली भी उनके ही पीछे-पीछे चलने लगा।

भगवान बुद्ध आगे एक शिला-खंड पर बैठे-बैठे अपना उपदेश दे रहे थे। हजारों व्यक्ति उनका उपदेश सुन रहे थे। राजा और व्यापारी दोनों ने उन्हें वंदन किया और अपना-अपना स्थान ग्रहण कर उपदेश सुनने बैठ गये। इनके साथ ही वह माली भी कुछ हटकर बैठ गया। माली ने देखा लोग भगवान बुद्ध के चरणों में फूल अर्पित कर रहे हैं। माली ने भी अपना फूल भगवान के चरणों में चढ़ा दिया।

फूल को समर्पित करने के बाद वह माली

भगवान की शान्त-मुद्रा को एकटक निहारने लगा। पैसे लेने का स्वार्थी माली के मन में आया ही नहीं। उस पवित्र मूर्ति के सामने पवित्र विचारों से ही उसका हृदय भर गया। इस वातावरण में स्वार्थी विचार एक क्षण के लिए भी जीवित नहीं रह सकते।

जब एक क्षण भर की भेंट का इतना असर हुआ तो बारह वर्ष के तप यदि ऐसे महात्मा के सत्संग में व्यतीत किये जाय तो जीवन सोने जैसा क्यों न होगा। सन्त कैसे बोलते हैं, कैसे चलते हैं, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार का व्यवहार करते हैं, कैसे निर्लेप रहते हैं, किस प्रकार निस्पृह रहते हैं कितने इच्छा रहित, कितने संयमी, कितने मृदु लेकिन कितने निश्चयी, कितने निरहंकारी, कैसे सेवा-परायण, कितने निरलस, कितने क्षमाशील, उनका वैराग्य कैसा रहता है, कैसी निर्मल दृष्टि होती है, कैसा विवेक होता है, कैसा अनासक्त व्यवहार होता है यह सब हमेशा उनके सहवास में रहने से ही समझ में आता है।

अपना यह मैला जीवन योगी, विरक्त साधु-महात्मा और सन्त पुरुषों के सहवास में रहनेसे ही निर्मल होने लगता है। अतः सर्वदा साधुजनों का दर्शन और सहवास ही करना चाहिए।

(शेष पृष्ठ ३६ का)

पुत्र-पौत्रों समेत मारा गया। दुराचारी दुर्योधन को अनेक अक्षौहिणी सेना भी उसे विजय न दिला सकी। अनियन्त्रित कामना के शिकार हुए विश्वामित्र को अपनी दीर्घकालीन तपस्याओं के फलसे वंचित होना पड़ा। बालिकला का प्रमाद उसी की पराजय का कारण बना। वशिष्ठ के पुत्र प्रचेता का क्रोध उसे ही खा गया। इतिहास के पन्ने-पन्ने में ऐसे असंख्यों उदाहरण मौजूद हैं जिनसे विदित होता है कि पाप और दुराचार मनुष्य की दुर्गति का ही कारण बनता है। उसे जहां आत्म-असंतोष बना रहता है वहां दूसरे लोग भी उद्यत होकर प्रतिकार करने के लिये तैयार बने रहते हैं। दुराचार का दुष्परिणाम कर्त्ता के पास स्वयं ही लौट आता है।

धन मनुष्य को सुखी नहीं रख सकता, क्योंकि वह जहां भी रहेगा वहां ईर्षा, द्वेष, छल, कपट, भय, असन्तोष विषय और वासनायें भी जरूर होंगी। इनसे मनुष्य के अन्तःकरण में सदैव खिन्नता बनी रहेगी। शारीरिक शक्ति पद या अन्य कोई भौतिक समृद्धि एक निश्चित सीमा तक ही सुख दे सकती है किन्तु सदाचारी की आत्मा तो सदैव ही प्रफुल्लित रहती है। वह निडर और निर्भीक होता है। श्रेष्ठ पुरुष दूसरे पापाचारी प्राणियों के पाप को ग्रहण नहीं करता, उन्हें अपराधी मान कर उनसे बदला भी लेना नहीं चाहता उनकी रक्षा सदाचार स्वयं ही करता है। क्योंकि सदाचार ही मनुष्य का सच्चा साथ और सद्गुणों का भूषण होता है। ××

योगविद्या का रहस्य

[श्री आयुर्वेद बृहस्पति श्री शिवकुमार शास्त्री]

तपस्विभ्योऽधिको योगी,
ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी,
तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

अर्थात् जहाँ तपस्वियों में योगी अधिक श्रेष्ठ होता है, वहाँ ज्ञानियों में (शास्त्र के ज्ञाताओं में) तथा कर्म काण्ड के करने वालों से भी योगी को ही सर्व श्रेष्ठ माना जाता है। अतः हे अर्जुन तू योग साधन में ही प्रवृत्त हो। क्योंकि योग साधनके आश्रय से ही सर्व प्रकार के पाप-तापों से अर्थात् जन्म-मरण के कष्टों से छुटकारा पाने के लिये ऋषि, मुनि, देव और मानव मोक्ष प्राप्ति के लिए प्राचीन काल से अद्यावधि लालायित रहते थे, एवं रहते हैं। किन्तु योगविज्ञान की साधना से पूर्ण लाभ वे ही जन उठा सकते हैं जो सत्संगति और सत्साहित्य के द्वारा शुद्धाचरण वाले बन चुके हैं तथा नियमित दिनचर्या पर आरूढ़ होकर यम, नियम, आसन और प्राणायाम आदि की साधना से स्वजीवन स्तर में उत्कर्ष एवं सुधार कर चुके होते हैं। उपर्युक्त साधनों का पालन गृहस्थ जीवन में भी साध्य होता है। केवल मात्र प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि वैराग्यवान, तीव्रसंवेगी जिज्ञासुओं के द्वारा ही सिद्ध होना सम्भव होता है। योगाभ्यासी का शरीर आरोग्य होना एवं आत्मा, इन्द्रियों का निर्मल होना भी परमावश्यक होता है। इनकी प्राप्ति योग के चतुर्थ अंग प्राणायाम के द्वारा अभ्यासी को स्वयं उपलब्ध होती जाती है।

पंच शिखाचार्य जीने भी ऐसा ही कहा है :—

तपो न परं प्राणायामात् ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्य ।

अर्थात् प्राणायाम के समान अन्य कोई तप नहीं है, इसके द्वारा आत्मा और इन्द्रियों के मल शुद्ध होकर प्राणी (मनुष्य) का ज्ञान प्रदीप्त हो जाता है।

इसी प्रकार से मनु महाराज ने भी "मनुस्मृति" में प्राणायाम की महत्ता का वर्णन किया।

दह्यन्ते ध्मायमानानां,
धातूनांहि यथा मलाः ।

तथेन्द्रियाणाम् दह्यन्ते,
दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

जिस प्रकार भस्त्रिका का यन्त्र (धौंकनी द्वारा धौंकने से) अग्नि में तपाने पर सुवर्ण, चाँदी आदि सर्व धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार से ही नियमित प्राणायाम के अभ्यास द्वारा इन्द्रियों के सब दोष (विकार) नष्ट हो जाते हैं और प्राण मनुष्य के वश में हो जाते हैं।

हमारे लिखने में कतिपय जिज्ञासु बन्धु ऐसी आशंका कर सकते हैं कि आध्यात्मिक ज्ञान और योग साधन के अभ्यास से शारीरिक आरोग्यता का कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए किन्तु उनकी यह धारणा निर्दोष नहीं है, क्योंकि आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी स्वस्थ शरीर ही सर्व प्रथम मुख्य साधन होता है। आयुर्वेद शास्त्र में भी, धर्मार्थ काममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्, मोक्ष प्राप्ति के लिए आरोग्य शरीर ही मुख्य साधन बतलाया गया है। अतः यह पूर्णरूप से सिद्ध हो जाता है कि योग साधन के लिए शरीर का आरोग्य होना सर्व प्रथम आवश्यक है।

योग सिद्धि के पश्चात् योगियों की भाँति-भाँति की विभूतियाँ, चमत्कार (सिद्धियाँ, करिश्मे) पढ़ने, सुनने में आते रहते हैं, किन्तु इस प्रकार के करिश्मों या चमत्कारों के द्वारा स्वयं योगियों का अथवा संसार का कोई विशेष लाभ एवं कल्याण होना सम्भव नहीं होता है।

अनेक योगिराज योग साधन के द्वारा स्वात्म कल्याण के साथ संसार के प्राणियों को मिथ्या मार्ग पर चलने से बचाकर कल्याण मार्ग का पथ-प्रदर्शन कर भूले-भटके अज्ञानीजनों का भी परमोद्धार करते रहे हैं एवं वर्तमान और भविष्य में भी पथ-भ्रष्ट प्राणियों का अधिक उपकार करना योगाभ्यासियों के द्वारा ही अधिक सम्भव हो सकता है। अतः योगसिद्धियों की उपलब्धियों के पश्चात् योगियों द्वारा संसार के प्राणियों का उपकार करना भी परम कर्तव्य है। सुधार मौखिक एवं लेखनी दोनों के द्वारा किया जा सकता है।

साथ ही यह भी स्मरणीय है कि प्राणायाम और योगसिद्धियों के विषय में भ्रामक बातों एवं अनेकानेक प्रचलित किंवदन्तियों में न फँसकर वेदोक्त प्रकारानुसार बताये योग शास्त्र के सत्साहित्य में वर्णित यम, नियम, प्राणायाम आदि के अभ्यास को अपनाकर योग साधन में सिद्धि प्राप्त करके आत्म-कल्याण एवं पर-कल्याण करना ही परम श्रेयस्कर है।

लेकिन इस सत्य को नहीं भूल जाना चाहिए कि योग का निर्देशन किसी सद्गुरु से ही प्राप्त करना ठीक रहता है।

निर्गुण अष्टांग योग

[श्री पन्त महाराज, बेलगांव]

चैतन्य का योग ही निर्गुण अष्टांग योग कहलाता है। यह चैतन्य मिला अलग होकर बच रहा शेष ही ब्रह्म है। अब अष्टांग का विवरण करता हूँ, ध्यान देकर सुन।

(१) तन, मन, प्राण, इन्द्रिय, इत्यादि विषयों में हमें विराग उत्पन्न हो जावे तो वह यम कहलाता है। समस्त दृश्य से उकताहट ही यमांग है।

(२) हमें सर्व विषयों में उत्पन्न हुआ विराग बुद्धि में दृढ़ स्थिर हो जावे तो वही योगाङ्गों का उत्तम नियमांग है।

(३) विषयासक्ति, तत्कार्य निरर्थक वार्ता, सकल विषयों का विकार भाव ज्ञान से नष्ट होकर मति में सर्व विषयों से उदासीन स्थिति प्राप्त हो जावे तो वही आसन कहलाता है।

(४) "शरीरादि समस्त मिथ्या", ऐसा निश्चय करने से हमारी बाह्य व्यवहार चेष्टा शान्त होकर वायु-कम्प स्थिर हो जावे तो वह योगी जन-सम्मत प्राणायाम कहलाता है।

(५) यह मिथ्या जग मिथ्या दृश्य दिखाता है, इस प्रकार देखने वाली मिथ्या दृष्टि का परिहार होकर सुतन जैसी सत्यावस्था को जानने वाली ज्ञान दृष्टि प्राप्त हो जावे तो वह प्रत्याहार कहलाता है।

(६) सत्य जानने वाला अन्तर्मुख ही बलवान होकर बाह्य व्यापार की अपेक्षा न करते हुए, परिशुद्ध ज्ञान में मग्न होकर, स्थिरता से वहीं बने रहें तो धारणा कहलाती है।

(७) मिथ्या भावना का अभ्यास उदय न होकर परिपूर्ण चैतन्यमात्र ही हम हैं, ऐसी जो भावना है वही ध्यान है।

(८) भावना को शुद्ध चिदानन्द दिखाने वाली वह भावना ही हममें लय पाकर उर्वरित निजानन्द ज्ञान के सर्व शेष आत्मलीन ही समाधि कहलाती है।

(९) ये बताए हुये निर्गुण अष्टांग के कार्य सुप्त रहने के कारण मिथ्या होने वाले ही हैं। इसे निज ज्ञान से जानकर यह तुर्यपद भूलकर बचा रहने वाला शेष ही तुर्यातीतपद कहलाता है। वही निजपद है।

(१०) हे सद्विवेक सम्पन्न शिष्य! ऊपर वर्णित तुर्यपद के "इदं" "अहं" नामक सर्व दृश्य किञ्चित् भी न रहकर चिदानन्द शुद्ध ही होकर रहने वाला ही निजपद यह अनुभव सिद्ध है। इसलिए यह बताया हुआ बोध सत्य है यह जान।

जप योग और गायत्री मन्त्र

[श्री तेजवीर सिंह बैसवाल]

वेद, शास्त्र तथा पुराणादि ग्रंथों में मनुष्य के कल्याण के लिए अनेक साधन दिखाये हैं। आधुनिक युग में वे सब श्रम एवं कष्ट साध्य होने से सर्व साधारण सांसारिक लोगों के लिए कठिन प्रतीत होते हैं, योगमार्ग में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मँहगाई के युग में स्वर्ण दान, गो दान, अन्न दान भी कोई सुगम कार्य नहीं है। इसलिए जपयोग का महत्व और फल शीघ्र सिद्धिप्रद होता है। इस जगत में प्रत्येक मनुष्य को अपनी सब प्रकार की इच्छाएँ पूर्ण कर लेने के लिये मन्त्र जप के समान सरल, सुलभ, सर्वश्रेष्ठ एवं अमोघ दूसरा कोई साधन नहीं है। जप से रोग नाश होता है। लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। जप से आयु की वृद्धि होती है। जप से सन्तान प्राप्त होती है। जप से बुद्धि एवं स्मरण शक्ति तीव्र होती है। जप से विद्या और ज्ञान की प्राप्ति होती है।

सारांश—जपयोग वास्तव में सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाला भूलोक का कल्प वृक्ष ही है। साधक को चाहिए कि वह किसी शुद्ध पवित्र एकान्त स्थान में शुद्ध-पवित्र होकर दोनों समय तथा हो सके तो रात्रि में स्वस्थ एवं शान्त मन से जप करे। गृहस्थाश्रमी हो तो उसके नियमानुसार ब्रह्मचर्य का अवश्य पालन करे। तथा सात्विक आहार-विहार द्वारा अपने में सत्वगुण बढ़ाने का प्रयत्न करे। शरीर में रजोगुण बढ़ जाने से मन चंचल होकर उसका उच्चाटन होने लगता है। अर्थात् साधन में एकाग्र एवं स्थिर नहीं हो सकता। और चंचल चित्त से किया हुआ कोई भी साधन सिद्धिदायक नहीं होता है। वैसे ही तमोगुण बढ़ने से प्रमाद, आलस्य, जड़ता, निद्रा-तन्द्रा-ग्लानि आदि विकार उत्पन्न होते हैं।

जप के तीन भेद हैं। जो जप मुँह से स्पष्ट उच्चारण किया जाता है उसको वाचिक जप कहते हैं। जो मन्द स्वर से किसी को सुनाई न दे अर्थात् मुँह ही मुँह में किया जाता है उस जप को उपांशु कहते हैं। जो जप जीभ एवम् होंठ न हिलाते हुए मन ही मन में किया जाता है उसको मानस जप कहते हैं। भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं।

"यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि"

अर्थात् सब यज्ञों में जप यज्ञ मेरी विभूति है। जप के लिए मन्त्र का कोई बन्धन नहीं है।

साधक की जिस मन्त्र पर श्रद्धा और रुचि हो वह उसी मन्त्र का जप कर सकता है। यदि किसी गुरु से मन्त्र की दीक्षा या उपदेश ग्रहण किया जाना ज्यादा श्रेष्ठ होगा, ध्यान सहित जप करना ही शीघ्र फलदायक है।

जप करते समय नेत्र बन्द कर हृदय में जिस मन्त्र का जो देवता हो उसकी सांगोपांग मूर्ति का अवश्य ध्यान करें। अर्थात् मन्त्र के अक्षरों को हृदयाकाश में अन्तर्दृष्टि से देखने का प्रयत्न करे। कुछ दिनों के अभ्यास से मन स्थिर होने पर मन्त्र के अक्षर प्रकाशमान ज्यों के त्यों स्पष्ट दिखने लगते हैं। ऐसा कई विद्वानों का अनुभव है। और अभ्यास दृढ़ होने पर मन्त्र ही देवता के रूप में दर्शन देता है। जैसा गायत्री तन्त्र में कहा गया है। मन्त्र के ध्यान से वह मन्त्र ही स्वयं देवता का रूप धारण कर ध्यान में दर्शन देकर पुनः मन्त्र में लीन हो जाता है। इस प्रकार बारम्बार मन्त्र और देवता का आविर्भाव, तिरोभाव (प्रकट होना और लोप होना) होता रहता है। हमारे हिन्दू धर्म में बड़े-बड़े मन्त्रों का समावेश है जिनके जपने से ईश्वर का साक्षात्कार यानी प्रत्यक्ष दर्शन एवं उसकी प्राप्ति और उनका ऐहिक तथा पारलौकिक परम कल्याण हुआ है।

गायत्री जप के अनेक दिव्य फल हैं पर मैं उनका अत्यन्त सूक्ष्म रूप में वर्णन करता हूँ। गायत्री का यथार्थ में क्या महत्व है? गायत्री का जप करने वाला परमश्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त होता है। जिस घर में जप किया जाता है, वहाँ कभी अग्नि नहीं लगती, उस घर में कभी बालक की मृत्यु नहीं होती और न ही उस घर में सर्प रहने पाते। जैसे ही जो गायत्री का जप करते हैं उनकी बाधा (अकस्मर) आजकल अंग्रेजी में बाधा कहते हैं। पिशाच, राक्षस, अग्नि, जल, वायु, सर्प, चोर, डाकू आदि से भय नहीं होता और नहीं उनको अन्य किसी प्रकार का दुःख प्राप्त होता है तथा अन्त में वे श्रेष्ठ गति को पाते हैं। जो गायत्री जप को करता है उसको अन्य किसी जप, तप, पूजा आदि की आवश्यकता नहीं रहती है।

गायत्री मन्त्र का अर्थ—

"ॐ भूर्भुव स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहिधियोयोनः प्रचोदयात् तस्य वाचकः प्रणव।"

इस योग सूत्र के अनुसार ॐ परमात्मा सर्वश्रेष्ठ नाम है। भूः भुवः स्वः ये तीन व्याहृतियाँ हैं। जैसे—

(१) जो (भूः) प्राणरूप से सब प्राणियों को जीवित रखता है और आरोग्य प्रदान करता है। जो (भुवः) अपान रूप से सब दुःखों का नाश करता है। जो (स्वः) व्यान रूप से सब जगत को गति देता है, चलाता है एवं प्रेरणा प्रदान करता है।

(२) जो भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक इन तीनों लोकों को प्रकाशित करता है, तथा

जो तीनों लोकों का अधिपति स्वामी होकर उन पर अपनी सत्ता या अधिकार चलाता है।

(३) जो सत् चित् (ज्ञान) और आनन्द अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप है।

(४) जो इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्ति रूप है उस सब जगत को उत्पन्न करने वाले प्रकाश स्वरूप सविता देव के उपासना करने योग्य श्रेष्ठ तेज का हम ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धियों को (कल्याण कारक) प्रेरणा प्रदान करता है।

प्रत्येक मनुष्य जो भी काम करता है वह उसकी बुद्धिसे जैसी प्रेरणा मिलती है, उसी के अनुसार करता है। सद्बुद्धि की प्रेरणा करना सूर्य के तेज का मुख्य धर्म है। तेज का ध्यान करते हुए अन्तर्दृष्टि में लाल, पीले, नीले, श्वेत आदि रंगों के चक्र या मण्डल एक में एक मिले हुए घूमते दिखाई देते हैं।

ऋषि दयानन्द ने मूर्ति पूजा व अन्य मंत्र, तन्त्रों आदि का खण्डन किया है, लेकिन इस महामंत्र का उन्होंने भी समर्थन किया और अपने सम्प्रदाय में इसका प्रचार किया। अब आप ही अन्दाजा लगाइये कि इस गायत्री मंत्र की महिमा कितनी है! यदि अनेक मनुष्यों ने एक जगह बैठकर गायत्री का जप किया तो सूर्य के पास से एक ही तेज किरण आती है। लेकिन उसकी चौड़ाई बहुत ही अधिक रहती है। साथ में जप करने वालों के सूक्ष्म देह उस समय एक जगह मिल जाते हैं और ऐसे मिश्रण से उत्पन्न होने वाले एक विशाल सूक्ष्म देह में से सात बड़े प्रवाह बाहर निकलते हैं। हरएक मनुष्य में से अलग-अलग सात प्रवाह नहीं निकलते। ऐसे सभी चमत्कार दिव्य दृष्टि द्वारा ही दिखाई देते हैं।

जप करने वाले मनुष्य के शरीर में से तेज का प्रवाह निकलकर जिन मनुष्यों के शरीर में प्रवेश करता है वे उसके वशीभूत होकर उसकी इच्छानुकूल आचरण करने लगते हैं। तथा वह तेज जितनी दूर तक फैला होता है, उस क्षेत्र की वस्तुयें इच्छा होने पर आकर्षित होकर उसके पास आती हैं। रामायण काल का एक प्रसंग जो किसी बड़े अध्यात्मवादी से सुना है, वह कि मेघनाथ ने जो बज्र शक्ति श्री लक्ष्मण जी पर चलाई थी, वह गायत्री मन्त्र की ही महिमा थी, अन्यथा लक्ष्मण जी जो कि शेष-अवतार थे, मेघनाद द्वारा कभी भी मूर्छित नहीं हो पाते।

एक बार राजस्थान में बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा। लोग भूख-प्यास से व्याकुल होकर मरने लगे। फिर एक बड़े योगी (महात्मा) ने जो कि गायत्री मन्त्र जपते थे, लोगों के प्राण बचाये। महात्मा जी जिस स्थान पर बैठे और ध्यान लगाया, वहाँ पर अन्न के भण्डार लग गये। भूखे लोग अकाल से बच गये। एक व्यक्ति मेरे अपने अनुभव में आया। वह एक बड़े असाध्य रोगसे ग्रस्त था। डाक्टरी चिकित्सा से हताश होकर, मेरे सम्पर्क में आया, अतः मैंने उसको गायत्री मन्त्र के जप की सलाह दी और विधि भी बतला दी। मरता क्या नहीं करता वाली कहावत है। उस रोगी व्यक्ति ने श्रद्धापूर्वक गायत्री जप किया और कुछ ही दिनों में असाध्य रोग से छुटकारा पाया। इस मन्त्र की जप संख्या एक लाख पच्चीस हजार (१,२५०००) है। इस मन्त्र द्वारा मार्जित पानी पिलाने से बुखार, भूत, प्रेत, नजर आदि भी दूर हो जाती है, पर विश्वास होना जरूरी है। जिन लोगों को विश्वास नहीं है वह प्रभु के इस खजाने का कोई लाभ नहीं उठा सकते।

—:o:—

आश्रम समाचार— (पृष्ठ ८ से आगे)

कार्यक्रम चलता। शामली, फीरोजाबाद, आगरा तथा समीपस्थ ग्रामोंसे आये हुए अनेक साधकों ने अपने-अपने वैराग्यदायक आध्यात्मिक गायन प्रस्तुत किये।

सु श्री उमा शर्मा ने सुभद्रा और अर्जुन के युद्ध को संगीतमय रोचक कथा अपने मधुर कण्ठ से सुनाकर श्रोताओं को भाव-विभोर बनाया।

वक्ताओं और प्रवचन कर्त्ताओं में प्रमुख वक्ता थे जम्मू काश्मीर के ख्याति प्राप्त योगी श्री हर भक्त चैतन्य जी, जिन्होंने योग को विश्व व्यापी बनाने के लिए दुर्गापुर काश्मीर में योग प्रचार का एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान स्थापित किया हुआ है। श्री चैतन्य जी श्री सिद्ध गुफा सवाई के संचालक योग योगेश्वर श्री सद्गुरु देव जी महाराज के ही परम प्रिय शिष्य हैं और अपने दुर्गापुर स्थित अन्तर्राष्ट्रीय योग प्रचार केन्द्र के संचालन में श्री चैतन्य जी को श्री गुरुदेव जी का पूर्ण समर्थन और सहयोग प्राप्त है। बसन्तोत्सव समारोह में आप प्रति वर्ष ही प्रभुजी तथा श्री गुरुदेव जी को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिए आते हैं। अपने प्रवचनों में आपने अपने अनुभूत योग प्रयोगों पर प्रकाश डालते हुए सभी से योग मार्ग पर चलने की अपील की। आपने बताया कि योगी ही समस्त ऐश्वर्यों को ग्रहण कर दूसरों को ऐश्वर्य सम्पन्न बना सकता है।

श्री गुरुदेव जी के एक और प्रिय शिष्य जो अब संन्यास दीक्षा ले चुके हैं और अब जिनका नाम स्वामी विद्यानन्द जी महाराज है समारोह में अलीगढ़ जिले के प्रमुख वैदिक प्रचारक श्री ठा० रामचन्द्रसिंह के साथ सम्मिलित हुए थे। आप दोनों के प्रवचन बड़े ही सारगर्भित और उपदेशप्रद रहे। ठाकुर श्री रामचन्द्र सिंह ने विश्व के भूगोल का परिचय देकर अपनी स्मरण शक्ति का अनोखा परिचय दिया आपके ओजपूर्ण भाषण का भी श्रोता समूह पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

उत्सव के अंतिम दिन योगार्थियों और गुरु पूजन के लिए आये कुछ भाई बहनों की लम्बी कतारें तथा समारोह में शामिल होने वालों की भारी भीड़ इस बात का परिचय दे रही थी कि कितनी अगाध श्रद्धा आदर और प्रेमभाव जन समूह के हृदय में महा योगी की लीला भूमि और अपने गुरु देव के प्रति है।

अंतिम दिन की कार्यवाही विशाल भण्डारे के साथ उत्साह पूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुई। आश्रम के अनन्य प्रेमी श्री पं० भोजदत्त जी शर्मा ने समारोह की कार्यवाही का संचालन श्री गुरुदेव जी के निर्देशन में बड़ी ही सफलता से किया।

—००—

❁ नये वर्ष का मूल्य भेजिए ❁

'सिद्धियोग' के उन सभी ग्राहकों से जिनका प्रचलित नये वर्ष का मूल्य अभी प्राप्त नहीं हुआ है—यह निवेदन है कि अपना मूल्य १५ रु० हमें मनी आर्डर द्वारा शीघ्र भेज दें। मई मास के अन्त तक हम उनके मनीआर्डर प्राप्त हो जाने की प्रतीक्षा करेंगे। इसके पश्चात् जून के प्रथम सप्ताह में 'सिद्धयोग' का विशेषांक हम उन्हें वी० पी० द्वारा प्रेषित करेंगे। अभी बढ़ी हुई डाक दरों के सहित वी०पी० से भेजने पर 'सिद्धयोग' का मूल्य लगभग १८ रु० देय होगा अतः हमारा सुझाव सभी ग्राहक बन्धुओं से यही है कि वे अपना मूल्य १५ रु० हमें मनी आर्डर द्वारा ही भेज दें। इससे व्यर्थ का रजिस्ट्री व्यय बचेगा। मई के अन्त तक मनीआर्डर से मूल्य प्राप्त न होने की दशा में हम जिन बंधुओं को वी०पी० भेजें उन्हें चाहिए कि वी० पी० पहुँचने पर वे उसे छुड़ा लेने की कृपा करें। यदि किसी कारण वश कोई भाई वी० पी० छुड़ाने की इच्छा न रखते हों तो हमें एक कार्ड भेज कर इस आशय की सूचना दे दें ताकि वी० पी० भेजने और उसके लौट आने के कारण आश्रम व्यर्थ के पोस्टेज भार से बचा रहे।

— श्रीनाथ शर्मा
व्यवस्थापक

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्ध योग

संस्थापक संपादक तथा संरक्षक:
योगिराज आचार्य श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

समाधि सुख

इस शब्द को समझ लेना जरूरी है। तुमने बहुत से सुख जाने हैं-कभी भोजन का सुख, कभी स्वास्थ्य का सुख, कभी प्यास लगी तो जल से तृप्ति का सुख, कभी शरीर भोग का सुख, संभोग का सुख —तुमने बहुत सुख जाने हैं। लेकिन इन सुखों के सम्बन्ध में यह एक बात समझ लेना जरूरी है और वह यह कि इन सब सुखों के साथ दुःख जुड़ा हुआ है। दुःख पहले है और लम्बा है और सुख क्षण भर है। सुख और दुःख जुड़े हुए हैं दुःख की कीमत चुकानी पड़ती है। सुख पाने के लिए संसार में। हर आदमी चाहता है कि दुःख कट जाय और सुख बच जाय पर ऐसा होता नहीं क्योंकि सुख दुःख दोनों मिले हुए हैं। बल्कि इसके समाधि सुख ऐसा सुख है जिसमें कोई दुःख नहीं। सुख सिर्फ होने का आनन्द है और यह समाधि नित्यानन्द है। इसके साथ कोई तृष्णा कोई दुःख जुड़ा नहीं है

आचार्य रजनीश—

卐

मुद्रक—[illegible]